श्री सिद्धयोग प्रकाशन मासिक-282002 (आगरा) उ.प्र.

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

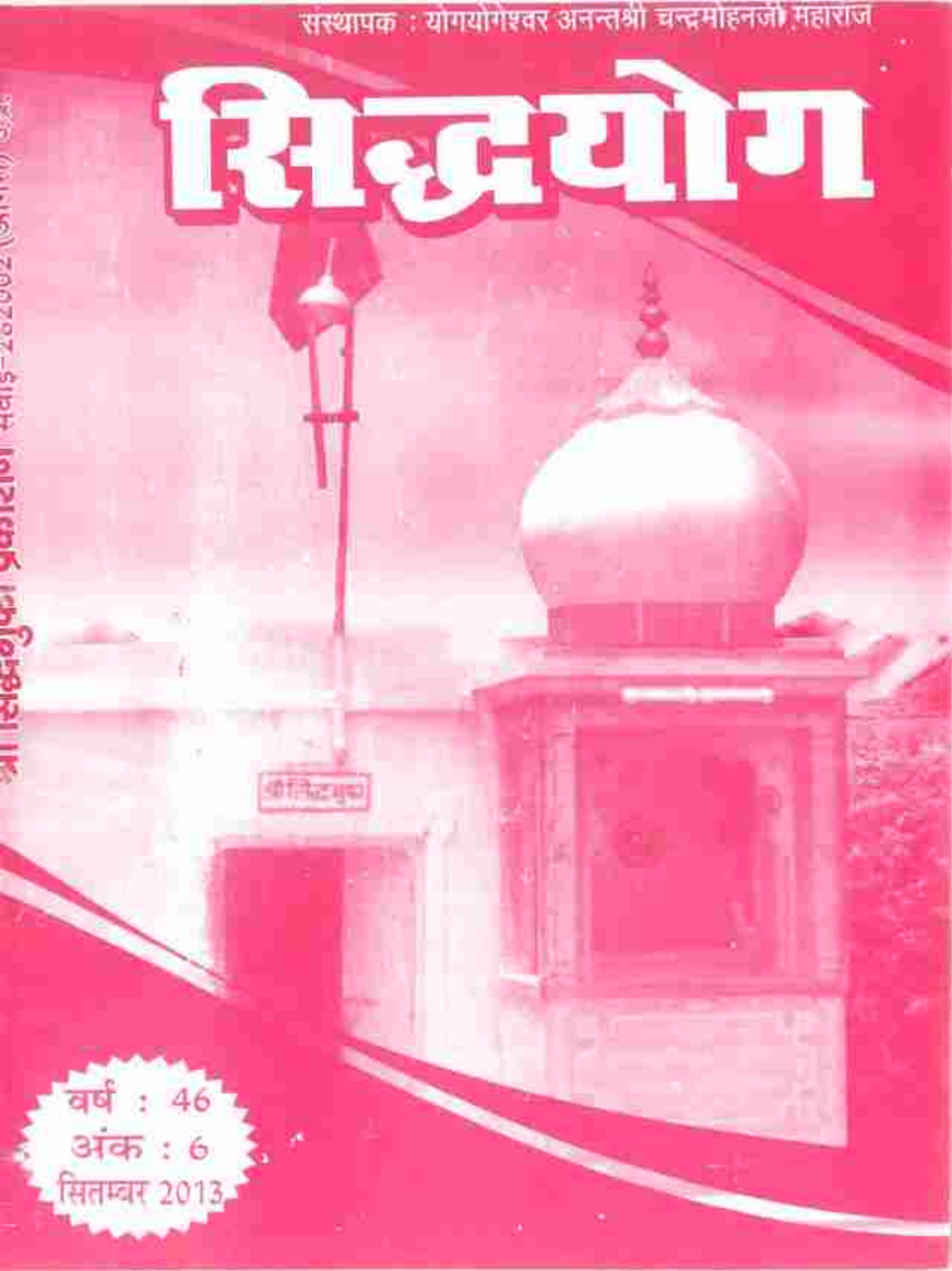

वर्ष : 46
अंक : 6
सितम्बर 2013

अमृत कण

विद्वान प्रशस्यते लोके विद्वान् गच्छति गौरवम्।
विद्यया लभ्यते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस संसार में विद्वान ही प्रशंसित होता है, विद्वान ही सर्वत्र आदर पाता है। विद्या से ही मनुष्य धन–धान्य, मान–प्रतिष्ठा आदि सब कुछ प्राप्त कर लेता है। विद्या का हर क्षेत्र में आदर होता है। 'विद्या ददाति विनयं' के अनुसार विद्या से विनम्रता आती है।

◆ ◆ ◆

योग युक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।

(श्रीमद् भगवद् गीता)

अर्थात् जो भक्तिभाव से कर्म करता है, विशुद्ध आत्मा है और अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में रखता है, वह सबका प्रिय होता है और लोग उसे प्रिय होते हैं। ऐसा व्यक्ति कर्म करता हुआ भी कभी कर्मफल से बंधता नहीं।

◆ ◆ ◆

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रिय।
ज्ञान लब्धवा परां शान्तिम चिरेणाधिगच्छति।।

(श्रीमद् भगवद् गीता)

जो जितेन्द्रिय है साधन परायण है और श्रद्धावान है उस मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त कर वह तत्क्षण भगवत–प्राप्ति रूप परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है।

◆ ◆ ◆

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःख भागिनः।।

ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, सदा असन्तुष्ट र ने वाला, सदा क्रोध करने वाला, सदा वहम में डूबा रहने वाला और दूसरे के भाग्य–भरोसे जीने वाला– ये छः प्रकार के लोग सदा दुःखी रहते हैं और दूसरों को भी दुःखी करते हैं।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रहा शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 46 सितम्बर - 2013 अंक : 6

स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया।
भगवद्भक्तियोगेन तिरोधन्ते शनैरिह।।
यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्टात्मनि परे हरौ।
क्लियन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः।।

श्रीमद्भागवत् 3 / 7

निष्कामभाव से धर्मो का आचरण करने पर भगवत् कृपा से प्राप्त हुए भक्तियोग के द्वारा यह देहाभिमानी जीव में ही देह के मिथ्याधर्मो की निवृत्ति धीरे-धीरे निवृत्त हो जाती है। जिस समय समस्त इन्द्रियाँ विषयों से हटकर साक्षी परमात्मा श्री हरि में निश्चलभाव से स्थित हो जाती हैं, उस समय गहरी निद्रा में सोये हुए मनुष्य के समान जीव के राग द्वेषादि सारे क्लेश सर्वथा नष्ट हो जाते हैं।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 9
3. श्री मद्भागवत् में योग परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह 12
4. मैं ध्यान किसका करूँ। – डॉ. जे. पी. शर्मा 15
5. योग-दर्शन में 'ईश्वर-प्राणिधन' – श्री कृष्णानन्द गुप्त 17
6. योगी के संकल्प से असाध्य रोग का मोचन 21
7. समर्पण योग – सुमन कुराना 24
8. आत्मसमर्पण फलन – प्रो. ऋषिराम शर्मा 27
9. योग आसन – उत्तानकूर्मासन 31
10. गुरुजी तेरे साथ है – श्रीमती शारदा सिसौदिया 33
11. गुरुदेव तेरे चरणों में – जगदीश राए बंसल 34
12. रामरती ही क्यों? – केशवदेव उपाध्याय 35

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

• विशेष लेख

योगी का अन्तर्धान

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने इस विषय को भली प्रकार से खोलकर समझाने का प्रयास किया है कि संयमित मन को योगी जहाँ लगाना चाहता है वहाँ लग जाया करता है और संयमित मन वाले योगी की बुद्धि सत्य परम निर्मल होने के नाते वह जिस वस्तु का साक्षात्कार करना चाहता है उसका साक्षात्कार उसको संकल्पमात्र से ही हो जाया करता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि योगी के मन में इस बात का स्फुरण हो जाय कि मैं अमुक वस्तु को जानना चाहता हूँ। उस संकल्प के आधार पर ही वह योगी उस वस्तु तत्व को जान लेता है क्योंकि उसके मन में उस परम सद्गुरु का प्रकाश भरा रहता है। अतः जहाँ ज्योंही संकल्प का स्फुरण हुआ त्योंही योगी ने उसे तत्काल जान लिया। इससे पहले किसी लेख में परिचित ज्ञान के विषय में समझाया गया है। किन्तु इसमें खास बात यह थी कि योगी ने किसी के चित्तिमात्र चित्त को अपने संयम का लक्ष्य बनाया है। अतः उसे प्रख्याप्रवृत्ति स्थितिशील चित्त का ही साक्षात्कार होगा न कि उस विषय का जिस विषय में वह साधक अनुरागी है। चित्त ज्ञान के संयम के आधार पर तो इतना ही जान पायेगा कि अमुक व्यक्ति का चित्त स्वरूप विशुद्ध सत्व स्वरूप है एवं दूसरे व्यक्ति का चित्तस्वरूप प्रवृत्तिरूप राजप्रधान है। इसके अतिरिक्त अमुक व्यक्ति का चित्त स्थितिरूप तम प्रधान है। केवल मात्र इतना ही उस समय योगी के संयम का विषय था।

इसके अतिरिक्त योगी यदि यह जानना चाहेगा कि अमुक साधक का चित्त किन क्रियाओं में क्रियान्वित है। एवं किन विषयों में अनुरागी है। यदि इस बात को योगी जानना चाहेगा तो वह उसके संयम का दूसरा विषय होगा। न कि चित्तिमात्र चित्त के ज्ञान से रंजित चित्त को जान सकेगा। इसके आगे के सूत्र में भगवान पतंजलि देव ने अन्तर्धान के विषय का वर्णन किया है। अन्तर्धान क्रिया के विषय में लोगों के मन में बहुत सी भ्रान्तियाँ हैं। कितने ही लोगों का विचार है कि अन्तर्धान होता ही नहीं। इस क्रिया को ही गप कहकर लोग अपने मन को उपराम कर लेते हैं। भारतवर्ष में अकर्मण्य लोगों का यह एक सिद्धान्त सा बन गया है कि जो विषय उनकी समझ में न आयें उसे अपनी मति के अनुसार निश्चय करके एवं उस सिद्धान्त को गलत बतलाकर छोड़ देते हैं यही बात योगी की अन्तर्धान क्रिया के विषय में भी

समझ लेनी चाहिए। किन्तु वस्तुतः शास्त्रीय सिद्धान्त हमारे पूर्वजों की ऋतम्भरा प्रज्ञा का शुभ परिणाम है।

योगी संप्रज्ञात समाधि का अभ्यास करता हुआ वितर्कानुगत, विचारानुगत एवं आनन्दानुगत इन तीन श्रेणियों में से निकलकर जिस समय स्मितानुगत योग का विद्यार्थी बनता है एवं निर्वाणोन्मुखी वृत्ति को प्राप्त करता है उस समय उस योगी की बुद्धि में ऋत का वास हो जाया करता है। जब तक साधक इन स्टेजों को तय नहीं कर लेता तब तक वह सिद्धान्त का निर्णायक नहीं हो सकता। किन्तु फिर भी लोक में यह देखने में आता है कि जिस किसी भी व्यक्ति ने थोड़ी बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली वही अपने आपको सब प्रकार से योग्य एवं सिद्धान्तों का निर्णायक समझ बैठता है। एवं अपने प्रख्याप्रवृत्ति स्थितिशील चित्त के साथ लोगों को मार्गदर्शन कराने लगता है। अन्त में पहुँचता उसी लक्ष्य को है यथा – 'अन्धेनं नीयमानो यथा अन्धः' एक अन्धा दूसरे अन्धे की उँगली पकड़कर ले जाता है, रास्ते का ठीक ज्ञान, न इसको है न उसको। इसी प्रकार से जो लोग शास्त्रीय सिद्धान्तों को न समझ कर अपनी मति के अनुसार शास्त्र विरुद्ध गलत निर्णय दे देते हैं। वे लोग 'अन्धे नीयमानः तथा अन्धः' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं। अन्तर्धान क्रिया के विषय में भगवान पतंजलि देव अपना सत्य निर्णय लिखते हैं –

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्द्धानम्।

अर्थात् जिस समय योगी काया के रूप में संयम करता है तो वह उसकी ग्राह्यशक्ति को रोक लेता है। उसके परिणामस्वरूप देखने वाले की आँखों का प्रकाश उसको नहीं छू पाता। इसके फलस्वरूप योगी अन्तर्धान हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह योगी किसी को भी दिखाई नहीं देता। पढ़िये श्री व्यास देवजी के भाष्य का सार –

जिस समय योगी काया के रूप में संयम करता है तो अपने मन के दृढ़ संकल्प से उस रूप की ग्राह्यशक्ति को बाँध लेता है। उसके फलस्वरूप देखने वाले की आँखों का प्रकाश कायरूप की ग्राह्यशक्ति के स्तम्भित होने से उसके शरीर पर नहीं पड़ता है, ऐसा करने से योगी को अन्तर्धान प्राप्त हो जाता है। इस बात को स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि कृष्णपक्ष की काली अंधेरी रात्रि में कोई तेज पावर की बिजली का बल्ब जल रहा है। उस तेज रोशनी की ओर हमारी आँखें चटपट देख लेती हैं और उसको देखकर साधक यह जान जाता है। यह बिजली का प्रकाश यहाँ से इतने मील की दूरी पर अमुक गाँव में हो रहा है। कहने वाला मनुष्य चटपट बड़े वेग के साथ कह देता है कि वह प्रकाश इतना तेज था कि उसकी झलक पड़ते ही हमारी आँखें उधर खिंच गई एवं उसको जान लेने की यह

इच्छा प्रबल हो गयी कि हम जानें यह क्या वस्तु है। यह हुआ साधक का उस प्रकाश के प्रति चक्षुप्रकाश सम्प्रयोग। अर्थात् उस प्रकाश में इतनी अधिक ग्राह्यशक्ति है कि जिसने हमारी आँखों की रोशनी को अपनी ओर आकर्षित कर लिया, और हमारी आँखों ने उसको देख लिया। इसी प्रकार से यदि कोई व्यक्ति तेज रोशनी से जलने वाले उस विद्युत बल्ब को किसी काले कपड़े, मोमजामे या किसी ऐसी और वस्तु से कि जिससे ढक देने से उसका प्रकाश बाहर न जा सके, उसको ढक लें तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि उसकी ग्राह्यशक्ति को रोक देने के कारण वह किसी को भी दिखाई नहीं देगा। यह तो एक उदाहरण है, उदाहरण एकाक्षी हुआ करता है।

ग्राह्यशक्ति के स्तम्भन का अर्थ समझाने के लिए उदाहरणों के साथ ही उस विषय को स्पष्ट किया जाता है। एक मनुष्य तीव्र प्रकाश वाली टार्च के स्विच को दबा देता है। उसमें से प्रकाश निकलने लगता है। आँखों के अन्दर–अन्दर भी प्रकाश मौजूद है, आँखों का प्रकाश भी उस प्रकाश पर पड़ा और उसने जान लिया कि मार्ग साफ है। कदाचित् देखने वाले की आँखों में प्रकाश हो ही नहीं तो टार्च लाइट फेंकते रहो उसको कुछ भी दिखाई नहीं देगा। देखने वाले की आँखों में भी प्रकाश हो तभी टार्च की रोशनी दिखाई देगी। क्योंकि टार्च के अन्दर तो ग्राह्यशक्ति मौजूद है – किन्तु आँखों में प्रकाश न होने से नहीं देखा जा सकता है। इसी प्रकार अन्तर्धान क्रिया में जिस समय योगी धारणा के बल से काया के रूप में संयम करता है। तो अपने दृढ़ संकल्प से उस रूप की ग्राह्यशक्ति को स्तंभित कर लेता है, रोक लेता है। उसके फलस्वरूप देखने वाले की आँखों का प्रकाश उसके शरीर पर नहीं पड़ता। इसी के फलस्वरूप वह साधक वहाँ बैठा रहने पर भी किसी को दिखलाई नहीं देता। इसी का नाम अन्तर्धान क्रिया है। संयम सिद्ध योगी के लिए अन्तर्धान होना सहज–सी बात है। अन्तर्धान का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि योगी का शरीर नष्ट हो जाता है या कहीं चला जाता है। चला कहीं नहीं जाता वह मौजूद तो वहीं पर रहता है किन्तु सर्व–साधारण की आँखों का प्रकाश उस पर नहीं पड़ता। इसके फलस्वरूप वह योगी वहाँ पर बैठा हुआ ही छिप जाता है। भगवान विश्वात्मा श्री कृष्ण के चरित्रों में यह बात कई जगहों पर पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि उन्होंने कई स्थानों पर स्वयं अपने को अन्तर्हित किया और उनके मित्रों का समुदाय उनको ढूंढने की चेष्टा करता रहा किन्तु वह किसी को भी दृष्टिगोचर नहीं हुए। रासलीला का प्रकरण आप लोगों ने पढ़ा ही होगा। उसमें अन्तर्धान क्रिया को कितना स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है। भगवान श्री कृष्ण ने रास क्रीड़ा आरम्भ कर दी। अपनी काय–निर्माण शक्ति से अपने हजारों शरीरों का निर्माण किया। जितनी गोपिकायें थीं उतने ही श्री कृष्ण तत्काल

दिखाई देने लगे –

अङ्गनामङ्गनामन्तरोमावधो, माधवं माधवमन्तरेणाङ्गना।
इत्थमाकल्पिते मण्डलेमध्यगः संजगौ वेगुना देवकीनन्दनः।।

अर्थात् एक–एक गोपी और एक–एक कृष्ण इस प्रकार मण्डलान्वित चक्र में हजारों गोपी और हजारों श्री कृष्ण दिखलाई दे रहे थे। इस प्रकार रासमण्डल आरम्भ हो जाने के बाद जब उन गोपियों के मन में कुछ अहंकृति के भाव पैदा हुए तो उन सबके देखते–देखते ही काया रूप में संयम करके रूप की ग्राह्यशक्ति को स्तम्भित करके श्री राधिकाओं को ले करके अन्तर्धान हो गये, जिसके फलस्वरूप ब्रजगोपियों ने बड़ा विलाप किया। थोड़ी दूर चलने पर श्री राधिकाजी को भी छोड़कर अन्तर्धान हो गये। परिणामस्वरूप श्री राधिका जी एवं सभी ब्रजगोपियाँ बहुत व्याकुल हुईं। शरीर में अत्यंत दुःख हुआ तो भगवान उनके बीच में ही प्रकट हो गये –

तामाविर्मूच्छौरिः स्मयमान्मुखाम्बुजः।
पीताम्बर धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः।।

अर्थात् कामदेव को मथन करने वाले श्री कृष्ण पीताम्बर और माला पहने हुए उन सबके बीच ही प्रगट हो गये। यह था श्री कृष्ण का अन्तर्धान। समझने वाली बात केवलमात्र एक ही है – साधक को कोई क्रिया बड़े तीव्रतम् अभ्यास के बाद सिद्ध हो पाती है। एवं साधना के बल से ही साधक योग उसको कर पाता है। किन्तु सिद्ध योगिराज एवं श्री कृष्ण जैसे अनादिकालीन महासिद्ध जब किसी क्रिया को करना चाहते हैं तो उनकी वह क्रिया उनके केवल चिन्तनमात्र से ही अनायास हो जाती है। उनको किसी प्रकार की किसी विशेष विधान पूर्वक कुछ साधना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रत्युत उनके संकल्प में ही सकल शक्तियों का वास होता है। उनके चिन्तनमात्र से ही सब कार्य सिद्ध हो जाया करते हैं। श्री कृष्ण का यह उदाहरण ऐतिहासिक उदाहरण है। मैं इस लेख में इस समय के विद्यमान एक महापुरुष का उदाहरण दिये बिना नहीं रह सकता। यह महापुरुष बहुत बड़े उद्यमी और प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति हैं। एक सभा में वे गये हुए थे। आर्य समाज की स्टेज थी। अन्तर्धान क्रिया पर वहाँ विवेचना हुई। अन्तर्धान क्रिया को गलत कहा गया। यह महापुरुष भी वहाँ मौजूद थे। उस समय उनका नाम था लाला खुशहालचन्द खुशन्दि। मेरे विचार में सभी शिष्ट व्यक्ति लाला खुशहाल चन्द खुशन्दि को जानते हैं। यह लाहौर के रहने वाले हैं उन दिनों 'मिलाप' अखबार के एडीटर थे। इनसे पूछा गया अन्तर्धान क्रिया के विषय में आपका क्या विचार है।

महात्मा खुशहालचन्द खुशन्दि चुप रहे। बार-बार पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया – इस विषय में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। जब तक साधना के आधार पर या किसी अनुभवी व्यक्ति द्वारा मैं इस क्रिया को स्वयं देख न लूँ।' उस दिन की उस स्टेज पर योग के दो सिद्धान्तों का खण्डन किया गया था। पहला विषय था योगी अन्तर्धान नहीं हो सकता। दूसरा विषय था योगी का आसन जमीन से ऊपर नहीं उठ सकता। क्योंकि मनुष्य के शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से अधिक है। पृथ्वी इसको अपनी ओर आकर्षित किये रहती है। मिट्टी के ढेले को आकाश में यदि फेंका जाये तो वह आकाश में न रहकर पृथ्वी पर लौटकर गिरता है। आदि-आदि बातें बिना अनुभव की वहाँ एक उपदेशक ने कही। दोनों ही विषयों के सम्बन्ध में श्री खुशन्दि जी से प्रश्न किया गया कि इस विषय में आप अपना मत बताइये। महात्मा खुशहालचन्द ने स्पष्ट उत्तर दिया कि मैं तब तक इस विषय में कुछ नहीं कह सकता जब तक कि मैं स्वयं ना जान लूँ। महात्मा खुशहालचन्द अन्तर्धान क्रिया को देखने व जानने के लिए अति इच्छुक रहे। साधक तीव्रतम तपस्या एवं स्वाध्याय के बल से इष्टदेव के दर्शन करता है। ऋषि मुनि-देवता लोग उसके आँखों के सामने आया करते हैं। इसी सिद्धान्त को रख करके लाला खुशहालचन्द खुशन्दि ने तीव्रतम् तपस्या एवं स्वाध्याय को करना आरम्भ कर दिया। समय आने पर इन्होंने संन्यास लिया और अब यह महात्मा आनन्द स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं। समय आने पर श्री आनंद स्वामी ने कैलाश मान सरोवर आदि की यात्रा की उसी यात्रा के संदर्भ में इनको एक सिद्ध योगिराज के दर्शन प्राप्त हुए। यह योगिराज रात के तीन बजे के लगभग इनके सामने प्रकट हुए। इनके मस्तक में विभूति लगाकर दीक्षा-दीक्षा शब्द कहकर अन्तर्धान हो गये।

महात्मा आनन्द स्वामी का यह पहला अवसर था जबकि इन्होंने अपनी तपश्चर्या एवं स्वाध्याय के परिणामस्वरूप इस प्रकार एक महापुरुष के दर्शन प्राप्त किये और अन्तर्धान क्रिया को भी आँखों के सामने देख लिया। किन्तु इनकी लगन अब और दृढ़वती हो गई। यह अपने अभ्यास में बैठ गये। सूर्योदय होने के बाद इन्होंने वहाँ के वाशिन्दे पहाड़ी लोगों से पूछा कि क्या इस क्षेत्र में कोई सिद्ध योगीराज महात्मा निवास करते हैं? उन लोगों ने उत्तर दिया – हाँ! यहाँ से दो-तीन मील की दूरी पर एक महात्मा निवास करते हैं। यह महात्मा गुफा में रहते हैं। इनकी गुफा के सामने लगभग दो सौ तीन सौ मन का पत्थर लगा रहता है जिसको कोई हटा नहीं सकता। कभी-कभी जब वह महात्मा निकलते हैं तो अपने आप उस पत्थर को हटाया करते हैं और कोई सांसारिक व्यक्ति उनके सामने जाय तो उसको पत्थरों से ही मारते हैं। महात्मा आनन्द स्वामी ने दृढ़ विचार किया और महात्मा के दर्शनार्थ गुफा पर पहुँचे। इनके

पहुँचते ही उस महात्मा ने पत्थर हटा दिया। महात्मा आनन्द स्वामी अन्दर गये तो इनको देखकर बड़ा हर्ष हुआ। क्योंकि वह यही महापुरुष थे जो रात के तीन बजे दर्शन देकर एवं विभूति लगाकर दीक्षा दे आये थे। महात्मा आनन्द स्वामी ने उनके सामने अपने दोनों प्रश्न रखे – क्या योगी का आसन जमीन से ऊपर उठ जाया करता है? योगी ने उत्तर दिया – हाँ! मेरा आसन जमीन से ऊपर उठ जाता है। महात्मा आनन्द स्वामी ने कहा – क्या मैं इसको देखने का अधिकारी हूँ। महात्मा ने उत्तर दिया – हाँ ! तुम अधिकारी हो, मैंने ही तुम्हें बुलाया है, तुम गौर के साथ देख लो मेरा आसन जमीन से ऊपर कैसे उठता है। यह कहकर वह महात्मा पद्मासन लगाकर बैठ गये, भस्त्रिका प्राणायाम आरम्भ हुआ। शनैः शनैः शरीर में कम्पन एवं कम्पन के बाद दादुरी वृत्ति हुई। इसके फस्वरूप वे शनैः शनैः जमीन से ऊपर उठने लगे एवं थोडी ही देर के बाद उनका सिर गुफा की छत से जाकर लग गया। योगीराज आकाश में निराधार ठहरे रहे एवं थोड़ी देर के बाद शनैः शनैः पूर्ववत् जमीन पर आकर बैठ गये।

महात्मा आनन्द स्वामी ने पूछा यह क्रिया आपको कितने वर्ष में सिद्ध हो पायी है। उन्होंने उत्तर दिया कि यह मेरे उन्नीस वर्ष के अभ्यास का परिणाम है। इसी प्रकार से श्री आनन्द स्वामी ने उन्हीं महात्मा से पुनः अन्तर्धान क्रिया को देखा। अन्य बहुत–सी बातचीत करने के पश्चात् वे पुनः अपने स्थान को लौटा।

इस प्रकार से आनन्द स्व ने योग की इन अलौकिक क्रियाओं को स्वयं देखा तथा स्वयं ही अनुभव किया था।

●●●

यह संसार धर्म-क्षेत्र है

"यह संसार धर्म क्षेत्र है, नैतिक संघर्ष के लिए समर भूमि है। निर्णायक तत्व मनुष्यों के हृदयों में विद्यमान है, जहां कि ये युद्ध प्रतिदिन प्रति घड़ी चल रहे हैं। पृथ्वी से स्वर्ग तक और दुःख से आत्मा तक धर्म के मार्ग द्वारा ही उठा जा सकता है। अपने शारीरिक अस्तित्व की दृष्टि से भी हम धर्म का आचरण करते हुए उस सुरक्षा की स्थिति तक पहुँच सकते हैं, जहां पहुँच कर प्रत्येक कठिनाई का अन्त आनन्द में होता है। यह संसार धर्म क्षेत्र है, सन्तों के पनपने की भूमि, यहां आत्मा की पवित्र ज्वाला कभी बुझने नहीं पाई है। इसे कर्म-भूमि भी कहा जा सकता है। हम इसमें अपना कार्य करते हैं और आत्मा के निर्माण के प्रयोजन को पूरा करते हैं।"

- डॉ. राधाकृष्णनन

बुद्धिमान कौन ?

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

बुद्धि ज्ञान प्राप्ति का एक करण है, साधन है। इसलिए दर्शनशास्त्र में इसे बुद्धिन्द्रिय कहा गया है। ''निश्चयात्मिका बुद्धिः'' इस परिभाषा से बुद्धि का कार्य निश्चय या निर्णय करना होता है। मन में संकल्प विकल्प चलते रहते हैं किन्तु बुद्धि जिस बात का निर्णय कर दे, वैसे ही व्यक्ति कार्य करने लगता है। बुद्धि प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्व है। ''मनसस्तु परा बुद्धिः यो बुद्धेः परतस्तुसः'' अर्थात् मन से भी सूक्ष्म या परे बुद्धि है और बुद्धि से भी परे जो तत्व है उसे ही आत्मा कहते हैं। बुद्धि एक दर्पण की भांति है यदि दर्पण में मैल जमा हुआ है तो उस पर प्रतिबिम्ब ठीक नहीं दिखाई देता है। मैल के साफ कर देने पर प्रतिबिम्ब ठीक दिखाई देता है। बुद्धि पर रजोगुण व तमोगुण रूपी मैल जमा हुआ होता है, तो सामने की वस्तु का सही ज्ञान नहीं हो पाता है। रजोगुण व तमोगुण रूपी मल के हटा दिये जाने पर सामने की वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

बुद्धि के मैल को ही कल्मष कहा गया है, जब तक कल्मष है, बुद्धि में सम्यक ज्ञान नहीं हो सकता। स्वच्छ बुद्धि में ही आत्मा का सही प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। सामान्य रूप से बुद्धि के ऊपर माया का पर्दा पड़ा होता है। भगवान अपने को माया से ढ़के रहते हैं, इसी कारण से भगवान सब के लिए सर्वत्र प्रकाशित नहीं रहते हैं। ''नाहं प्रकाशः सर्वस्य योग माया समावृता'' इस माया को पार करना बहुत ही दुस्तर है। ''मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेताम् तरन्ति ते।।

भगवान कहते हैं मेरी माया दुस्तर है, जो मेरी शरण में आ जाता है वह माया से पार जा सकता है। भगवान ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ बुद्धि प्रदान की है। मनुष्य के लिए यह सबसे बड़ी देन हैं। मस्तिष्क में ही बुद्धि का वास है। वैज्ञानिकों ने खोजा है कि बुद्धि या मस्तिष्क के दो भाग है। एक दाँया भाग है तथा दूसरा बाँया। जो व्यक्ति कल्पनाशील है, ध्यान अभ्यास करते हैं उनका दाँया भाग अधिक विकसित होता है और उससे ऊर्जा का अधिक प्रस्फुटन होता है। मनुष्यों में बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो मस्तिष्क के दोनों भाग काम में लाते हैं। सांसारिक जीवन बिताने

वालों का बाँया भाग ही काम करता है। योगी लोग ही मस्तिष्क के दोनों भाग को सक्रिय कर लेते हैं और उनमें अद्‌भुत बौद्धिक क्षमताओं का आविर्भाव हो जाता है। श्रेष्ठ बुद्धि को मेधा कहा गया है उस मेधा की प्राप्ति के लिए देवगण और पितर भी प्रार्थना करते रहते हैं। मनुष्य यदि बुद्धि का सही-सही उपयोग करे तो कल्याण की ओर चला जाता है अन्यथा पतन की ओर चला जाता है।

उपनिषदों में श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग का सुन्दर वर्णन आता है। यदि मनुष्य सांसारिक कामनाओं की पूर्ति में लगा रहता है तो वह पतन की ओर बह जाया करता है, यदि मनुष्य बुद्धि को कल्याण मार्ग में लगाता है तो वह श्रेय मार्ग कहलाता है। इस मार्ग में चलकर मनुष्य कल्याण का भागी बन जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी बुद्धि और वृत्ति को सन्मार्ग में लगावे, यही सुमति कहलाता है और कुमति में मनुष्य भोगों में लिप्त होकर पतन की ओर बढ़ जाता है। मनुष्य को चाहिए कि वह बुद्धि का पूर्ण सदुपयोग करे, बुद्धि को कुमार्ग पर जाने से रोके। यही अभ्यास है और यही साधना है।

गीता के दसवें अध्याय में, भगवान ने घोषणा की है कि जो मेरा निरन्तर चिन्तन करता है उसे मैं बुद्धि योग प्रदान करता हूँ बुद्धियोग से मेरा भक्त मुझे पा जाता है, मैं अपने भक्त के अन्तःकरण में ज्योतिस्वरूप होकर अन्धकार का नाश कर प्रकाश भर देता हूँ। यह बुद्धि योग बड़ी दुर्लभ वस्तु है। अठारहवें अध्याय में भी भगवान कहते हैं; ''बुद्धियोग मुपाश्रित्य मच्चित्ता सततं भव''। अतः बुद्धियोग का आश्रय लेकर तू मुझ में ही चित्त वाला बनजा। ध्यान योग के अभ्यास से बुद्धि निर्मल होकर विकास की पराकाष्ठा में पहुँचती है। इस विकास को ही प्रज्ञा कहते हैं, प्रज्ञा से ही विवेक ख्याति का उदय होता है। विवेक ख्याति साधना की बहुत बड़ी उपलब्धि है। विवेक ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान कहलाता है। प्रकृति एवं पुरुष का पृथक्-पृथक् रूप से ज्ञान हो जाना। जड़ और चेतन का मिश्रण है उसका ज्ञान करके दोनों को अलग-अलग रूप में देखना।

आज मनुष्य भौतिक विज्ञान की उन्नति को पाकर अपने को सुखी मान रहा है किन्तु उसे सुख की बजाय दुःख ही मिल रहा है। जो सुख का भण्डार है महास्त्रोत है उस परमात्मा से उसका सम्बन्ध नहीं बन पाया है। जब तक मनुष्य परम चेतन से नहीं जुड़ेगा उसे ज्ञान व शान्ति नहीं मिल सकती है कहना चाहिए कि उसने बुद्धि का ठीक प्रयोग नहीं किया।

श्री मद्भागवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भगवान श्री कृष्ण चन्द ने अपने स्वरूप का वर्णन किया है। वे कहते हैं। सभी आत्माओं का सृजन-कर्ता मैं उत्तम पुरुष या पुरुषोत्तम हूँ। जो सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है जिसे परमात्मा भी कहा जाता है जो सारे विश्व के प्राणियों का पालनहार है। जो उस पुरुषोत्तम को योग एवं भक्ति से जान लेता है उसका साक्षात्कार कर लेता है ऐसा विवेकी व्यक्ति सब कुछ जानने वाला योगी मुझे सब प्रकार से भजता है। भगवान कहते हैं –

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।

एत्द बुद्धवा बुद्धिमान्स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।।

हे अर्जुन ! यह परमात्मविषयक ज्ञान जो मैंने तुम्हें बतलाया है उसको जो साक्षात्कार पूर्वक जान लेता है वह बुद्धिमान हो जाता है और कृतकृत्य भी हो जाता है। भाव यह है कि भगवान् से एकाकार हो जाता है वह बुद्धिमान हो जाता है और कृतकृत्य हो जाता है। भगवान् को जाने बिना यदि अपने को कोई बुद्धिमान समझता है तो यह उसका भ्रम है। बुद्धिमान वही व्यक्ति कहा जायेगा जिसने परमात्मा साक्षात्कार कर लिया है और कृतकृत्य हो चुका हो।

● ● ●

मनुष्य जीवन भर शरीर को ही अपना अस्तित्व मानकर उसी को सजाने में लगा रहता है। आत्मा की चर्चा एवं चिन्तन के लिए तो उस पर समय ही नहीं है। जबकि आत्मा ही सर्वशक्तिमान, विश्व को प्रकाशित करने वाली, विश्व कल्याणकारी, विघ्न विनाशक, कर्मातीत, शुद्ध तथा परमात्मा द्वारा रक्षित है।

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

हम क्या सत्य में, ध्यान–समाधि, ज्ञान–विचार में उद्यत है? हमारे कर्म कितने निष्काम हैं? उत्तर अधिकांशतः निराशाजनक है। भोग–प्रधान, कलिकाल में योगाभ्यास आसान नहीं है। दिव्य द्रष्टा सद्गुरुओं ने कलिकाल हेतु भगवान के नामोच्चारण, मंत्र जप, सद्गुरु, इष्ट में श्रद्धा–भक्ति को ही साधना के रूप में करने का बारम्बार आदेश दिया है। चित्त को निष्काम, एकाग्र अथवा विचारशील बनाना विषयी लोगों के लिए असंभव है।

विद्वान हो अथवा मूढ़ श्रद्धा–भक्ति के साथ वह जिस साधन को अपनायेगा वह शुष्क साधनों की अपेक्षा सुगम होगा। प्रेम एक ऐसा तत्व है जो अपनी आकर्षण–शक्ति से ही साधक को परमोच्च अवस्था प्रदान कर देती है। श्री भागवत पुराण में सभी विधाओं का वर्णन साधन के अर्थ में करते हुए भी, भक्ति–योग की प्रधानता युग को देखते हुए की गयी है।

प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में ब्रह्म के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। उसके ही संकल्प से जड़–चेतन युक्त मायामय नानत्व विस्तार फैला हुआ है। अतः हम उस मूल सत्यरूप परमात्मा का ध्यान करते हैं – 'सत्यं परं धीमहि'। धर्माचरण करते हुए भी यदि भगवान में, सद्गुरु में, अनुराग उदय न हो तो सारी क्रियायें श्रमदायक हैं। अतः एकाग्र मन से भक्तवत्सल श्री प्रभु का ही नित्य–निरन्तर कथा–श्रवण, यश–कीर्तन, रूपध्यान में लगना ही उचित मार्ग है। जन्म–जन्मान्तरों से कर्मों की गाँठ बड़ी–बड़ी है उसे नष्ट करना केवल साधक के सामर्थ्य की बात नहीं है। श्रीप्रभु की सहायता अपरिहार्य है।

अशुभ संस्कारों को नष्ट करने में सद्गुरु देव की कृपा बड़ी सहायक होती है। अध्याय दो में बताया गया है कि रजोगुण और तमोगुण के भाव काम–लोभ उत्प्रेरक हैं। श्रद्धा की प्रबलता से सत्व अधिष्ठान दृढ़ होने पर साधक के हृदय में श्री प्रभु का दर्शन होने से क्लीष्ट संस्कार नष्ट होते हैं। सत्व के प्रभाव से इष्ट प्रेम में हृदय आनन्द से भरा रहता है। इस अवस्था में भगवत कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव साधक को प्रतिपल होता रहता है। हृदयस्थ श्री प्रभु के दर्शन से हृदय की गाँठ खुल जाती है। सारे सन्देह मिट जाते हैं। कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है।

श्री भागवत में अत्यन्त सरलता पूर्वक ब्रह्म (परमात्म) तत्व, प्रकृति एवं प्रकृति विकार तथा अनुग्रह करने हेतु परमात्म–तत्व के अवतरण को विस्तार से कहीं, संक्षेप में कहीं वर्णन किया गया है। बार–बार पुर्नउक्ति आया है। गूढ़ तत्वों को मंदाधिकारियों तक पहुँचाने के लिए पृष्ठ पोषण करना आवश्यक हो जाता है।

परमात्मा (श्रीकृष्ण), प्रकृति और उसके गुणों से अतीत होते हुए भी अपनी गुणमयी माया से सर्ग के आरम्भ में इस जगत की सृष्टि की थी। श्री प्रभु के माया–विलास ही सत्व, रज

और तम हैं। अवतार में वे इन गुणों में वर्तन करते हुए दीखते हैं परन्तु तत्वतः वे परिपूर्ण विज्ञानानन्द घन हैं। ये गुण ही आगे सूक्ष्म भूतों (तन्मात्राओं), इन्द्रिय तथा मन, बुद्धि, चित्त अहंकार रूपी अन्तःकरण के असंख्य क्रम विनियोग द्वारा नाना योनियों तथा उनके अनुरूप, उन्हें विषयों की प्राप्ति कराते हैं।

प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में भगवान के अवतारों का वर्णन है। इच्छा शक्ति ही मूल शक्ति है। इसके द्वारा, ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति, चिद्शक्ति एवं आनन्द शक्ति का प्राकट्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म से होता हुआ स्थूल रूप में परिवर्तन परिवर्धन प्राप्त करता है। परमात्मा के इच्छा–शक्ति से, वे महत्तत्व से निष्पन्न पुरुष रूप धारण किये हैं। उनमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत ये सोलह कलाएँ हैं। वे पुरुष रूप परमात्मा कारण–जल में शयन करते हुए अपने योगनिद्रा का विस्तार किया। उनके नाभि से एक कमल प्रकट हुआ, उसके कर्णिका पर ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। योगनिद्रा के विस्तार में ही यह सम्पूर्ण सृष्टि एवं जीव जगत का प्रादुर्भाव होता गया है। योगी लोग इस रहस्य को दिव्य–दृष्टि से दर्शन कर तत्व बोध को प्राप्त होते हैं। 'योग निद्रां वितन्वतः', 'कल्पितां लोक विस्तारः' आदि श्लोकों में उपरोक्त भावों का प्रतिपादन किया गया है। संक्षेप में अवतारों के क्रम एवं संख्या जो वर्णित हैं उन्हें दिया जा रहा है। (1) कौमार सर्ग में – सनक, सनातन, सनन्दन, सनतकुमार। (2) सुकरावतार पृथ्वी को रसातल से लाने हेतु (3) देवर्षि नारद (4) नर–नारायण (5) सिद्धों के स्वामी कपिल (6) भगवान दत्तात्रेय (7) यज्ञ नारायण (8) ऋषभ देव (9) पृथु (10) मत्स्यावतार (11) कच्छप (12) धनवन्तरि (13) मोहनी (14) नरसिंह (15) वामन (16) श्री परशुराम (17) महर्षि व्यास (18) राम (19) बलराम (20) श्रीकृष्ण (21) बुद्धावतार (22) कल्कि अवतार

चौथे अध्याय में, भागवत रचना का कारण, भगवान वेदव्यास जी द्वारा अनेक ग्रंथ रचना करने के पश्चात् भी मनः शांति न मिलने को बताया गया है तथा निदान रूप भागवत रचना बताया गया है। सौनक जी ने सूत जी से पूछा – यह कथा किस युग में और किस कारण से हुई थी? शौनक जी ने कहा – इस परमहंस संहिता की रचना श्री वेद व्यास जी ने किया। उनके पुत्र शुकदेव जी बड़े योगी हैं सदैव एक रस परमात्मा में स्थित रहते हैं। बाह्य रूपक ऐसा रखते हैं कि सामान्य लोग उन्हें मूढ़ समझते हैं। विरक्त महायोगी शुकदेव जी संन्यास भाव से जिस समय जंगल में जा रहे थे उस समय उनका पीछा कर रहे व्यास जी ने देखा कि सरोवर में स्नान कर रही स्त्रियाँ नंगे युवक शुकदेव जी को देखकर अविचलित स्नान करती रहीं। परन्तु वस्त्र पहने व्यास जी को आता देखकर लज्जा निवार्णार्थ कपड़े पहन लिये।

आश्चर्य चकित महर्षि व्यास ने उन नवयुवतियों से इसका कारण पूछा उन्होंने उत्तर दिया कि 'आपकी दृष्टि में तो स्त्री–पुरुष का भेद बना हुआ है, परन्तु आपके पुत्र की दृष्टि में यह भेद नहीं है।' सूत जी ने उत्तर दिया – वर्तमान चतुर्युगी के तीसरे युग द्वापर में महर्षि परासर द्वारा वसु कन्या सत्यवती के गर्भ से कलावतार योगिराज व्यास जी का जन्म हुआ। वेदों का

विभाग करना, नाना पुराणों की रचना पंचम वेद महाभारत ग्रंथ रचने के पश्चात् भी उन्हें आत्म संतोष नहीं हो रहा था। देवर्षि नारद जी की प्रेरणा से भगवान के यश–कीर्तन से युक्त ग्रंथ सृजन में व्यास जी लग गये। इसी अध्याय में श्री नारद जी ने अपने पूर्व जीवन में दासी पुत्र होने की कथा कहते हुए बताते हैं कि चतुर्मास में एक स्थान पर एकत्रित योगियों की सेवा करने के फलस्वरूप उनमें अभ्यन्तर बोध जागृत हो गया। माता के मृत्यु के पश्चात् वे निर्जन वन में जाकर घोर साधनरत हुए। उन्हें परमात्मा का दर्शन लाभ कुछ पल के लिये हुआ। दर्शन अदृष्य होने पर व्याकुलता मन में बढ़ने पर आकाशवाणी हुआ – शांत मना हो जाओ। दुःख है कि इस जन्म में अब तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा क्योंकि तुम्हारी वासनाएँ अभी पूर्णतया शाँत नहीं हुई हैं। वत्स! अधकचरे योगियों को मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। 'अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम'

छठे अध्याय में श्री नारद जी ने कहा है कि जिन लोगों का चित्त निरन्तर विषय–भोगों की कामना से आतुर हो रहा है, उनके लिये भगवान की लीलाओं का कीर्तन संसार–सागर से पार करने वाला जहाज है। क्योंकि काम और लोभ से आहत मन वाले एकाएक यम–नियम योगादि मार्ग में अपने मन को नियोजित करने में सक्षम नहीं हो सकते –

यमादिभिर्योग पथैः काम लोभ हतो मुहुः।
मुकुन्द सेवया यद्वत्तथाऽऽत्माद्धा न शाम्यति।। 36।। स्कं 1, अ. 6

सप्तम अध्याय में महाभारत के एक कथानक का सार संक्षेप है। अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का सोते हुए वध करने के कारण अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा के माथे से मणि निकालना तथा अपमानित कर छोड़ देने की कथा है। इस अध्याय में बताया गया है कि भगवान के भक्ति योग से संसार में भागता मन सहजता से एकाग्रता को उपलब्ध होता है। आततायी किसे कहते हैं। जो दूसरों के घरों, फसलों में आग लगाता है। धोखे से जहर देकर मार डालता है। हिंसा के स्वभाव हेतु शस्त्र ग्रहण करने वाला, धन लूटने वाला, निर्बल के खेत एवं स्त्री का अपहरण करने वाला। अतः इन अति कर्मों के करने से गहन क्लिष्ट कर्म पैदा होते हैं।

अपमानित अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ में पल रहे परिक्षित को मारने हेतु ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। उस समय भय व्याकुल उत्तरा ने योगेश्वर श्री कृष्ण का स्मरण आर्त भाव से किया –

पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम।।

देवाधिदेव! जगदीश्वर! आप महायोगी हैं। आप मेरी रक्षा कीजिए, आपके शिवाय इस लोक में मुझे अभय देने वाला और कोई नहीं है। तत्काल योगेश्वर श्री कृष्ण ने उत्तरा के गर्भ को पाण्डवों की वंश– परम्परा चलाने के लिए अपनी माया के कवच से ढँक दिया –

अन्तः स्थ सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः।
स्वमायया ऽऽवृणोद्गर्भ वैराद्याः कुरु तन्तवे।। 41। स्कं. । अ.8 ● ● ●

मैं ध्यान किसका करूँ !

– डॉ. जे. पी. शर्मा, गुरु आशीष सदन, पौंटा साहिब (हि.प्र.)

फूलों की सुगन्ध में, चन्दन की गन्ध में, बच्चों की मुस्कान में तुम ही तो हो।
वीणा की झनकार में, तलवार की धार में, चित्रकार की कला में तुम ही तो हो।
फिर बतलाओ मेरे प्रभू मैं ध्यान किसका करूँ .....(1)

चाँद की चाँदनी में, सूरज की रोशनी में, पुरवाई बयार में, तुम ही तो हो।
इन्द्रधनुष की छटा में, बादलों की घटा में, योग यज्ञ और जाप में, तुम ही तो हो।।
फिर बतलाओ मेरे प्रभू मैं ध्यान किसका करूँ .....(2)

माता के दुलार में, पिता के प्यार में, दीनों की पुकार में, तुम ही तो हो।
वर्षा की फुहार में, गंगा की धार में, मन की उड़ान में, तुम ही तो हो।।
फिर बतलाओ मेरे प्रभू मैं ध्यान किसका करूँ .....(3)

कोयल की वाणी में, अमुओं की डाली में, भँवरों के गुंजार में, तुम ही तो हो।
ऊषा की आभा में, मोर पंख की शोभा में, पुष्पों के मकरन्द में, तुम ही तो हो।।
फिर बतलाओ मेरे प्रभू मैं ध्यान किसका करूँ .....(4)

मानव की चाह में, नदियों की राह में, सागर की थाह में, तुम ही तो हो।
होली के फाग में, हवन की आग में, गौ दूध में माखन तुम ही तो हो।।
फिर बतलाओ मेरे प्रभू मैं ध्यान किसका करूँ .....(5)

मेरे दाँये, मेरे बाँये और पाताल में, तुम ही तो हो।
मेरे आगे, मेरे पीछे, और मेरे ऊपर तुम ही तो हो।।
फिर बतलाओ मेरे प्रभू मैं ध्यान किसका करूँ .....(6)

खाने में साथ हो, पीने में साथ हो, यात्रा के साथी तुम ही तो हो।
शरीर की छाया में, नींदभरी काया में, पल पल की साँसों में तुम ही तो हो।
फिर बतलाओ मेरे प्रभू मैं ध्यान किसका करूँ .....(7)

सिंह की दहाड़ में, कछुआ की चाल में, मेरे पशुपति नाथ, तुम ही तो हो।
रात-दिन के साथी हो, कण-कण में वासी हो, नींद में रखैया, तुम ही तो हो।।
फिर बतलाओ मेरे प्रभू मैं ध्यान किसका करूँ .....(8)

"तेरी सत्ता के बिना, हे प्रभू मंगल मूल।
पत्ता तक हिलता नहीं, खिले न कोई फूल।।
जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।
कण-कण में समाया, हर गुल में तेरी बू है।।"

मैं पागल हो गया हूँ, रूदन कर रहा हूँ, यह पागलपन स्थाई कर दे।
अन्तर्ज्योति जगा दे, 'जय कमला' के सिर पर हाथ रख दे,
अपना असली रूप दिखा दे।।
ताकि ध्यान उस रूप का करूँ .....(9)

●●●

योग-दर्शन में 'ईश्वर-प्रणिधान'

– श्री कृष्णानन्द गुप्त, कछवा, मिर्जापुर

महर्षि पतञ्जलि देव ने 'योगदर्शन में क्रियायोग के तीन रूप बतलाये हैं। यथा – तपस्स्वाध्यायेश्वर प्रणि–धानानि क्रियां योगः' अर्थात्–तप, स्वाध्याय व ईश्वर–प्रणिधान क्रियायोग है। प्रस्तुत लेख में हम इसके एक मात्र अंग 'ईश्वर–प्रणिधान' पर यथामति विचार करने का प्रयास करेंगे।

हमारे पूर्वाचार्यों ने समाधि–सिद्धि के लिए जहाँ अनेकानेक साधनों का निर्देश किया है, वहाँ भगवान पतंजलि देव ने एक परम सरल साधना 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' की आज्ञा प्रदान की है। 'ईश्वर–प्रणिधान' का स्पष्टीकरण बहुत ही सुन्दर रीति से 'योगभाष्य' में किया गया है –

'ईश्वर प्रणिधान तस्मिन परम गुरौ सर्व कर्मार्पणम्।'

(यो. द. 2/32 या. प्र. भा.)

उस परम गुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों को समर्पण कर देना या कर्मफलों का त्याग करना 'ईश्वर–प्रणिधान' है।

जिस परम गुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों के समर्पण की आज्ञा मिली है, उनका स्वरूप क्या है? क्योंकि संसार में कोई श्रीराम को कोई श्री कृष्ण को कोई श्रीब्रह्मा को कोई श्रीविष्णु इत्यादि को ईश्वर बताते हैं अतः ईश्वर के स्वरूप का निरूपण महर्षि ने योगदर्शन के तीन सूत्रों में किया है –

(1) क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।'

(यो. द. 1/24)

अर्थात्–क्लेश, कर्म, विपाक आशयों से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है।

(2) 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्।'

(यो. द. 1/25)

अर्थात् – जिससे अधिक कोई दूसरा नहीं है वह सर्वज्ञ है, उसमें ज्ञान पराकाष्ठा तक पहुँच चुका है।

(3) पूर्वेषामपि गुरु कालेनातवच्छेदात्।

(यो. द. 1/26)

समय के दायरे में बद्ध न होने के कारण वह (ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि) प्राचीन गुरुओं का भी गुरु परम गुरु है, पूर्व पुरुषों का भी बड़ा है।

अब हम इन सूत्रों में आये क्लेश, कर्म विपाक का अर्थ समझा कर यह बताने की कोशिश करेंगे कि वह सर्वोच्च सत्ता क्या है जिसे योगदर्शन में ईश्वर की संज्ञा प्रदान की गई है।

योग दर्शन में अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष और मृत्युभय ये पाँच 'क्लेश' बताये गये है –

अविद्याऽस्मिता राग द्वेषाभि–निवेशा :क्लेशा :। (यो.द. 2/3)

कर्म चार प्रकार का होता है – शुक्ल, कृष्ण और अशुक्ल–अकृष्ण। पाप कर्म तथा हिंसा व्यभिचार आदि का समूह कृष्ण कर्म के अन्तर्गत। तप, स्वाध्याय, ध्यानादि का समूह शुक्ल कर्म के अन्तर्गत। पर पीड़ा, अनुग्रह (पाप व पुण्य मिले हुए) आदि का समूह 'शुक्ल–कृष्ण' के अन्तर्गत। पाप व पुण्य दोनों से रहित ईश्वर समर्पित कर्म अशुक्ल–कर्म' के अन्तर्गत आते हैं।

कर्मा शुक्ला कृष्णं योगि नास्त्रिविध मितरेषाम्।

अविद्या आदि क्लेशों के रहने पर कर्मफल, जन्म आयु और भोग होता है –

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा :। (यो.द. 2/13)

इन सूत्रों के द्वारा हमें सुस्पष्ट पता चलता है कि महर्षि जिन परमगुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों के समर्पण का आदेश हमें देते हैं, वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि न होकर अपितु कोई दूसरी सर्वोच्च सत्ता है, जो क्लेश कर्म विपाक आशयों से रहित है। वह नित्य शुद्ध चित्स्वरूप परमात्मा सृष्टि के आरम्भ से अब तक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है व अनादि सिद्ध है। अतएव वह सत्ता क्या है। इस प्रश्न का समाधान करते हुए 'भास्वती टीका' में भाष्यकार कहते हैं –

पूर्वे गुरुवो हिरण्य गर्भादय: कालेनावच्छिद्यन्ते।।

अर्थात् जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है, वह अधिकृत सीमा है। सद्गुरु तत्व उससे भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है जिसका कोई अन्त नहीं है। वह है अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश रखती है अत: निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है –

यत्रावच्छेदनार्थेन कालो न उपावर्तते सगुरु:।

अर्थात् जिसका अन्त करने के लिए काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है वही सत्ता सद्गुरु तत्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं –

भयादस्य अग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्य:।

भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युर्धावति पंचम:।।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं, नेमा विद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्नि

तमेव भान्त मनु भाति सर्व तस्य भासं सर्व मिदं विभाति।।

अर्थात् वही एक सत्ता इस तरह की है जिसके भय से आग्नि तपती है, सूर्य तपता है, वायु और इन्द्र दौड़े–दौड़े फिरते हैं और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाश है न वहाँ सूर्य चमकता है न चन्द्रमा चमकता है न बिजली का प्रकाश है। अग्नि का तो कहना ही क्या है। उसी के आलोक से सारा संसार आलोकित हो रहा है। वही सद्गुरु सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की जाती है जिसके अन्दर वह तत्व प्रकाशित होता है। ये सभी प्रकरण यह प्रकट करते हैं कि वह अव्यक्त सत्ता जो सभी को प्रकाश देने वाली है सद्गुरु सत्ता ही है और उनके ही निमित्त सम्पूर्ण कर्मों का समर्पण कर देना या कर्म फलों का त्याग कर देना 'ईश्वर प्रणिधान' है। यह कोई मनमाना अर्थ नहीं है, बल्कि 'ईश्वर–प्रणिधान' शब्द से साफ दृष्टिगोचर होता है और उसको योगदर्शन के सब टीकाकारों ने स्वीकार किया है। तत्वतः 'ईश्वर–प्रणिधान' भक्ति मूलक निष्काम कर्म योग है जिसका उपदेश जगदात्मा श्रीकृष्ण ने अपने अनन्य सखा अर्जुन के प्रति गीता में किया है। यथा –

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।
शुभाशुभ फलै रेवं मोक्ष्यसे कर्म बन्धनैः।

(गी. 9/27–28)

'हे अर्जुन! तुम भोजन, होम, दान, तप आदि जो कुछ भी करते हो, सब मेरे अर्पण कर दो। इस प्रकार (ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने पर) तुम शुभ–अशुभ फल रूप कर्मों के बन्धन से छुटकारा पा जाओगे। योगवार्तिक कार विज्ञानभिक्षुने (यो. द. 2/1 और 32) सूत्र के भाष्य की व्याख्या करते हुए 'कर्मार्पण' और 'फलार्पण' के विषय में कर्म पुराण के निम्नलिखित वचन की ओर संकेत किया है –

कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम्। तत्सर्व त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्।। नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मौय कुरुते तथा। एत द्ब्रह्मार्पणं प्रोक्त मृषिभिस्तत्व दर्शिभिः।।

हे ईश्वर! इच्छा से या अनिच्छा से जो कुछ भी शुभ या अशुभ कर्म करता हूँ वह तेरी प्रेरणा से करता हूँ। वह सब तेरे ही अर्पण है। जो कुछ करता है सो ब्रह्म ही करता है, मैं कुछ नहीं करता हूँ' – इस भावना पूर्ण विधि को तत्वदर्शी ऋषियों ने 'ब्रह्मार्पण कर्म' कहा है।

यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात् परमेश्वरे। कर्मणामेतदप्याहुब्रह्मार्पण मनुत्तमम्।।

अथवा कर्मों के फलों को परमेश्वर के निमित्त अर्पण करदे – यह भी श्रेष्ठ 'ब्रह्मार्पण' है।

भाष्यकार ने जो 'ईश्वर–प्राणिधान' की व्याख्या की है उसके दो अंग है –

(1) ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण कर्मो को समर्पण करना और (2) कर्मफल त्याग।

आनन्द कन्द भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मफल त्याग या कर्मफल संन्यास को ही सर्व श्रेष्ठ आलम्बन बताते हुए कर्मफल के त्यागने वाले को 'त्यागी' 'योगी' और 'संन्यासी' कहा है –

संक्षेप में 'ईश्वर–प्रणिधान' योगाभ्यास की प्रथम वर्णाक्षरी है, इसके द्वारा अन्य साधनों के अभ्यास में भी दृढ़ता आती है।

• • •

शोक संवेदना

(1) बड़े दुःख की बात है कि गीतामृत पदावली के रचनाकार श्रीराम प्रकाश गुप्ता, हल्द्वानी, नैनीताल वालों का जुलाई में निधन हो गया है। प्रभु उनको अपने पावन चरण कमलों में स्थान दें। दुःख सन्तप्त परिवार को इस दुःसह्य दुःख को सहन करने की क्षमता प्रदान करें।

(2) बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि जय प्रकाश कंसल, पानीपत वालों की पत्नी का 20 जुलाई को देहावसान हो गया है। उनके दुःखी परिवारिजनों को 'सिद्धयोग' के सदस्य व आश्रमवासी अपनी हार्दिक संवेदना प्रेषित कर रहे हैं। श्री प्रभु जी इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें। श्री प्रभु जी उन्हें अपने अभय चरणों में स्थान दें ऐसी प्रार्थना है।

(3) सिरसा निवासी श्यामलाल चौधरी के पूज्य पिता श्री भगवानदास का करमगढ़ में निधन हो गया। इस अवसर पर दुःखी परिवार को सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट कर रहा है।

(4) कालपी डिग्री कॉलेज के पूर्व प्राचार्य श्री वीरेन्द्र सिंह की पत्नी का 23 जुलाई को देहावसान हो गया है सिद्धयोग मण्डल अपनी हार्दिक संवेदना प्रेषित करता है।

शोकाकुल

सिद्धयोग परिवार मण्डल

योगी के संकल्प से असाध्य रोग का मोचन

श्री गुरुदेव भगवान के अनन्य कृपा पात्र हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री जुगमन्दर दास जी उ.प्र. के सहारनपुर जनपद के निवासी थे। उनकी गुरु चरणों में अनन्य निष्ठा थी। वे श्री महाप्रभु जी के अवतारोत्सव चैत्र सुदी नौमी के उत्सव सप्तमी, अष्टमी और नौमी तथा गुरु पूर्णिमा के पर्व पर तीन दिन सिद्ध सेवित योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम पर अवश्य ही उपस्थित रहते थे। शायद ही ऐसा कोई वर्ष बीता हो जिसमें वो गुरु पूर्णिमा और महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अवतारोत्सव पर वे श्री सवांई धाम उपस्थित न रहे हों। सहारनपुर जनपद के यौगिक प्रचार एवं प्रसार का कार्य आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने इन्हीं को निमित्त बनाकर किया, वे उच्च कोटि के ध्यानाभ्यासी साधक थे एवं योगेश्वर द्वय के चरण कमलों में इनकी अनन्य निष्ठा थी। मेरे सद्गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, प्यार में इन्हें मंत्री जी कहकर पुकारा करते थे।

एक बार योग महामेला (महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अवतारोत्सव) पर सहारनपुर जनपद से काफी संख्या में हमारे गुरु भाई–बहन आध्यात्मिक लाभ पाने के लिए श्री सवांई धाम पहुँचे। उसमें हमारी आदरणीया गुरु बहन और आदरणीय गुरुभाई के पुत्र एवं धर्मपत्नी मुख्य थी। उन सबों ने श्री गुरुदेव भगवान की चरण–कमलों में प्रणाम किया। श्री मुख ने आशीर्वाद देने के बाद प्रश्न किया 'अरे लल्ला! मेरा जुगमन्दर नहीं आया।' उनके पुत्र ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि महाराज जी! पिता जी की हालत बहुत ज्यादे खराब है और उन्हें शुगर टी.बी. और पता नहीं क्या–क्या रोग हो गया। वे अपने जीवन से हताश एवं निराश हो गये हैं। डॉक्टरों ने उन्हें ज्यादे चलने–फिरने से मना किया है तथा वे स्वयं भी घर से बाहर कम ही निकलते हैं उनकी यह प्रार्थना सुनकर श्री गुरुदेव भगवान ने जुगमन्दर दास के पुत्र से कहा, 'लल्ला! चिन्ता या घबराने की कोई बात नहीं है, हमारा मंत्री जल्दी ही पूर्ण स्वस्थ हो जायेगा। तुम सब लोग खूब आनन्द व उत्साह के साथ श्री प्रभुजी के अवतारोत्सव में भाग लो और मंत्री जी के पुत्र के तरफ इशारा किये कि लल्ला! घर वापस जाते समय तुम हमसे मिलकर अवश्य जाना।'

हमारे सहारनपुर जनपद से आये गुरुभाई–बहनों ने श्री प्रभु जी के अवतारोत्सव का आनन्द चार दिन तक श्री सवांई आश्रम पर निवास कर लिया। एवं पांचवे दिन अपने घरों को वापस जाने हेतु श्री गुरुदेव भगवान से आज्ञा लेने हेतु प्रातः काल आठ बजे ही पहुँच गये। सभी गुरुभाई–बहनों ने गुरुदेव भगवान के श्री चरणों में प्रणाम किया एवं प्रार्थना किया कि महाराज जी! हम लोगों को अपने घर सहारनपुर जाने की आज्ञा दे देने की कृपा की जाय। श्री गुरुदेव

भगवान ने सबको प्रसाद एवं जाने की आज्ञा प्रदान की। जब श्री जुगमन्दर दास के पुत्र की पारी आयी तो श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने सेवारत हमारे एक आदरणीय गुरुभाई से मिठाइ का प्रसाद देने को कहा। वह दौड़ा–दौड़ा गया और एक किलो का एक पेठा का डब्बा लाकर श्री गुरुदेव भगवान के कर–कमलों में दिया। आराध्यदेव जी ने यह डब्बा श्री जुगमन्दर दास के पुत्र को सौंपते हुए यह आदेश दिया, 'लल्ला! पूरी की पूरी मिठाई जुगमन्दर दास को ही खानी है। इसमें का थोड़ा भी हिस्सा कोई दूसरा नहीं लेगा। यह प्रसाद खाने के बाद तुम्हारे पिताजी धीरे–धीरे स्वस्थ हो जायेंगे। तदन्तर सभी लोगों ने प्रणाम निवेदित किया एवं सभी गुरुभाई–बहन श्री गुरुदेव भगवान की जय, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जय, की गगन भेदी ध्वनियों से जयकारा किये एवं अपने घरों को जाने के लिए सहारनपुर की यात्रा आरम्भ की।

वह अपने निवास स्थान पहुँचकर जुगमन्दर दास जी के पुत्र ने अपने पिता श्री को प्रणाम किया एवं श्री गुरुदेव भगवान का दिया हुआ प्रसाद उनके हाथों में देते हुए निवेदन किया कि पिता जी, यह पेठा श्री गुरुदेव भगवान ने केवल आपको खाने के लिए दिया है। श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञा है कि यह पूरा का पूरा पेठा आपको ही ग्रहण करना है। इसका थोड़ा भी हिस्सा किसी दूसरों को नहीं खाना है। आदरणीय श्री जुगमन्दर दास जी के परिवार के सभी सदस्य आराध्यदेव जी की यह आज्ञा सुनकर महान आश्चर्य में पड़ गये। डॉक्टर ने तो राय दिया है कि दादा जी चीनी का एक कण भी मुँह में नहीं ले जायेंगे और श्री गुरुदेव भगवान ने कहा है कि यह पूरी मिठाई दादा जी को खानी है और दादा जी यह पूरी मिठाई खा गये, तो कम से कम आधा किलो चीनी इनके पेट में चली जायेगी। उन सबों ने कहा कि दादा जी डॉक्टर से राय लेकर ही यह मिठाई खाइये।

गुरुभक्तों में अग्रगणीय एवं अनन्य गुरु चरणानुरागी आदरणीय गुरुभाई श्री जुगमन्दर दास जी ने अपने परिवारिक सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कहा, 'श्री गुरुदेव की परामर्श मेरे लिए गुरु आज्ञा है। उसी के पालन में हमारा लोक और परलोक का कल्याण है। अतः यह पूरी की पूरी मिठाई मैं स्वयं खाऊंगा, परिणाम चाहे जो कुछ भी हो।'

परम आदरणीय भाई जी के परिवार वालों ने अनेक प्रकार से मना करने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि उनके इलाज करने वाले डॉक्टर से भी कहलवा दिया कि आप मिठाई का सेवन न करें यह आपके लिए जानलेवा भी साबित हो सकती है। सबकी बातों को सुनते हुए उन्होंने गुरु आज्ञा का पालन किया एवं धीरे–धीरे मिठाई का पूरा डब्बा खाली कर दिया। आश्चर्य! महान आश्चर्य! पूरा मिठाई खाने के बाद आदरणीय भाई जुगमन्दर दास जी ने अपना शुगर चेक कराया तो मिठाई खाने के पन्द्रह दिन पूर्व 360 था वह 170 पर आ गया था। श्री गुरुदेव भगवान द्वारा प्रदत्त पूरा पेठा खाने के बाद उन्होंने अपना डॉक्टरों से इलाज करना बन्द कर दिया था। कोई भी किसी प्रकार की दवा ग्रहण नहीं की, दूसरी शुगर की चेकिंग उन्होंने

लगभग पहली चेकिंग से लगभग तीस दिन बाद कराया तो शुगर की ग्रेडिंग 140 पर आ गयी थी। उन्होंने जब यह दोनों रिपोर्ट अपने घरेलू डॉक्टर को दिखाया तो उसने पूछा कि मंत्री जी आप किसका इलाज करा रहे है। आपका शुगर का स्तर बहुत जल्दी नीचे आ गया।

डॉक्टर का यह प्रश्न सुनकर हमारे परम आदरणीय गुरु भाई श्री जुगमन्दर दास जी (मंत्री जी) ने गुरु कृपा की बात स्पष्ट समझाने हेतु श्री गुरुदेव द्वारा प्रदत्त एक किलो पेठा खाने की बात का सविस्तार वर्णन किया। डॉक्टर उनकी बातों को एकाग्र मन से सुनता रहा एवं उसने कहा कि मंत्री जी आप झूँठ तो नहीं बोल रहे हैं क्योंकि शुगर का जटिल मरीज एक किलो पेठा खा जाय और उसके बाद उसका शुगर बढ़ने के बजाय घट जाय यह कदापि सम्भव नहीं है ऐसा हो ही नहीं सकता, बेचारे डॉक्टर को क्या पता कि काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले त्रिलोकी नाथ परम योग–योगेश्वर हमारे सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज वह परासत्ता हैं जिसके संकल्प से औषधियां अपना–अपना प्रभाव दिखाती हैं। कृपा प्रसंग हुआ अब तो सिर्फ एक ही बात से पूर्ण रूपेण आनन्द मिलता है कि .....

योगेश्वर दोनों सिर पर हैं,
तसल्ली हमको होती है।
सबकी नाव पानी में,
मेरी रेती में चलती है।।

● ● ●

स्थिरता निर्विकल्प समाधि है तथा एकाग्रता सविकल्प समाधी है। सविकल्प का तात्पर्य है कि उस अवधि में आवश्यक विचारों का मन:क्षेत्र में अपना काम करते रहना। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती–जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है; किन्तु दोनों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके अथवा जिसे एकाग्रता सिद्ध है उसे स्थिरता प्राप्त हो जाये – यह आवश्यक नहीं।

समर्पण योग

– सुमन कुराना (पानीपत)

यहाँ गीता के जिस अध्याय का वर्णन किया जा रहा है, यह किसी को उपदेश देने के लिए नहीं, जो इससे लाभ उठाना चाहते हैं उन्हें अवश्य लाभ होगा। इस अध्याय में राम के नाम की अपूर्व महिमा का वर्णन किया गया है सारे महाभारत के मध्य गीता और गीता के मध्य यह नवां अध्याय। अनेक कारणों से इस अध्याय को पावनता प्राप्त हो गयी है। कहते हैं कि ज्ञानदेव ने जब अन्तिम समाधि ली तो उन्होंने इसी अध्याय का जप करते हुए शरीर छोड़ा था। व्यासदेव का यह कितना बड़ा उपकार है। केवल भारतवर्ष पर ही नहीं अपितु सारी मनुष्य जाति पर उनका यह उपकार है। जो बात भगवान ने अर्जुन को बताई वह शब्दों द्वारा प्रकट करने योग्य न थी परन्तु दयाभाव से प्रेरित होकर व्यास जी ने इसे संस्कृत भाषा द्वारा प्रकट कर दिया। गुप्त वस्तु को वाणी का रूप प्रदान कर दिया। अध्याय के आरम्भ में भगवान कहते हैं –

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम।

यह जो राजविद्या है, यह जो पवित्र अपूर्व वस्तु है, वह प्रत्यक्ष अनुभव करने की है। भगवान उसे "प्रत्यक्षावगम" कहते हैं। शब्दों में न समाने वाली, प्रत्यक्ष अनुभव की कसौटी पर कसी हुई यह बात इस अध्याय में बताई गई है।

तुलसीदास जी ने कहा है –

को जाने को जैहे जमपुर, को सुरपुर धाम को।
तुलसिंही बहुत भलो लागत जगजीवन राम गुलाम को।।

कौन कहता है कि स्वर्ग कौन जाता है और यमपुर कौन जाता है यदि संसार में रहना है तो राम का गुलाम बनकर रहने में ही मुझे परम आनन्द आता है। राम का गुलाम होकर रहने की मिठास इस अध्याय में है। इसी देह में, इन्हीं आँखों से अनुभूत होने वाला फल, जीते जी अनुभव की जाने वाली बातें इस अध्याय में बताई गई हैं।

गीता जिस धर्म का सार है उसे वैदिक धर्म कहते हैं। वैदिक धर्म का अर्थ है वेदों से निकला हुआ धर्म। इस धराधाम पर जितने भी प्राचीन लेख हैं, उनमें वेद सबसे प्राचीन लेख माने जाते हैं। इसी से वेद पूज्यता को प्राप्त हो गए हैं। वेदों की क्रियाओं में बड़े बारीक विचार रहते हैं परन्तु जनसाधारण को इसका ज्ञान कैसे हो? इसके लिए कृपासागर संतपुरुष आगे बढ़कर बोले आओ इन वेदों का रस निकाल लें और संसार को दें।

वेदों ने अनन्त बातें कही हैं परन्तु सार रूप अर्थ निकला – **'हरि–नाम'**। हरि नाम वेदों का सार है। राम नाम से मोक्ष निश्चित हुआ। वेदों में छिपे मोक्ष को भगवान ने राजमार्ग पर

लाकर रख दिया। जिसका जैसा भी सीधा–सादा जीवन है, सेवा कर्म है, उसी को यज्ञ समझ कर करो। यही राजमार्ग है।

इसकी अपेक्षा राम का गुलाम होकर रहने का मार्ग अधिक सुलभ है। इंजीनियर रास्ते की ऊँचाई धीरे–धीरे बढ़ाता हुआ हमें ऊँचे शिखर पर ला बिठाता है, हमें पता भी नहीं लगता कि हम इतने ऊँचे चढ़ रहे हैं। इंजीनियर की खूबी की तरह ही इस राजमार्ग की खूबी है। मनुष्य जिस जगह कर्म करते हुए खड़ा है वह अपने सादे कर्म द्वारा परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

परमेश्वर क्या कहीं छिपकर बैठा है, वह तो हम सबके सामने सर्वत्र खड़ा है। ये सभी लोग परमात्मा की मूर्तियाँ हैं किसी का अपमान मत करो भगवान सब चराचर में प्रकट हो रहा है। इसे खोजने के लिए कृत्रिम उपायों की जरूरत नहीं है। उपाय बिल्कुल सीधा और सरल है। तुम जो कुछ सेवा कार्य करो उसका सम्बन्ध भगवान से जोड़ दो, बस काम बन जाएगा। तुम राम के गुलाम हो जाओ। इतना ही करो कि जो कुछ करते हो वह ईश्वरार्पण कर दो। अपना प्रत्येक कर्म परमात्मा से जोड़ दो यही इस अध्याय की शिक्षा है।

नवम् अध्याय में कर्मयोग व भक्तियोग का मधुर मिलाप है। कर्म योग का अर्थ है कर्म तो करना है परन्तु फल का त्याग कर देना है। कर्म इस तरह करो कि फल की आसक्ति चित्त को न छुए। यह अखरोट के पेड़ लगाने जैसा है, अखरोट के पेड़ पर 25 वर्ष के बाद फल लगते हैं। पेड़ लगाने वाले को शायद ही अपने जीवन में फल चखने को मिले या न मिले फिर भी पेड़ लगाना है बड़े प्यार से उसकी देखभाल करनी है। इस प्रकार कर्मयोग का अर्थ हुआ पेड़ लगाना और फल की अपेक्षा न रखना।

भक्तियोग – भावपूर्वक ईश्वर के साथ जुड़े रहना ही भक्तियोग है। राजयोग में कर्मयोग और भक्तियोग दोनों इकट्ठे हो जाते हैं। कर्म तो करना है परन्तु फल छोड़ना नहीं प्रभु को अर्पण कर देना है। राजयोग कहता है तुम्हारे कर्म का फल किसी न किसी को तो मिलेगा ही न? तो उसे भगवान को ही दे डालो भगवान को ही अर्पण कर दो। तुम्हारे कर्म में यदि दोष भी है तो भगवान के हाथों में जाते ही वह पवित्र हो जाएगा। हम दोष दूर करने का कितना ही प्रयत्न करें फिर भी दोष रह ही जाता है। फिर भी हम जितना शुद्ध होकर कर्म कर सकें, करें। बुद्धि ईश्वर की देन है उसे शुद्ध रूप में काम में लाना हमारा कर्तव्य है। अतः पात्रापात्र विवेक तो करना ही चाहिए किन्तु भगवद्भाव रखने से वह सुलभ हो जाता है। प्रत्यक्ष क्रिया जैसे–जैसे होती जाए वैसे–वैसे भगवान को अर्पण करके मन की सन्तुष्टि प्राप्त करते रहना चाहिए। फल छोड़ना नहीं भगवान को अर्पण कर देना है। हमें तो अपने मन में उत्पन्न होने वाली वासनाएँ, काम, क्रोध आदि विकार भी भगवान को अर्पण कर देने हैं। हमारी समस्त इन्द्रियाँ भी साधन हैं इन्हें भी प्रभु को अर्पण कर दो। कानों से हरि कथा सुनो, मुख से प्रभु का नाम रटते रहो। इन्द्रियाँ मारक नहीं तारक भी हैं। ईश्वरार्पण बुद्धि से इन्द्रियों से काम लेना ही राजमार्ग है इसी को राजयोग कहते हैं। तुम जहाँ जो भी कर्म करो उसे परमेश्वर को साक्षी मानकर उसे ही अर्पण

करते हुए करो। उदाहरण स्वरूप कबीरदास जी कपड़ा बुनते थे उसी में मस्त होकर गाया –

झीनी–झीनी बीनी चदरिया

यह गाते हुये झूमते जाते मानो परमेश्वर को ही ओढ़ाने के लिए यह चादर बुन रहा है। कवि स्तोत्र बनाता है ईश्वर के लिए, बुनकर कपड़ा बुनता है ईश्वर के लिए कितना चित्त को शुद्ध बनाने वाला और हृदय को हिलोर देने वाला विचार है। यदि यह भावना एक बार जीवन में आ जाए तो फिर देखो जीवन कितना निर्मल हो जाएगा। जब हम अपनी प्रत्येक क्रिया ईश्वर से जोड़ देते हैं तो जीवन में एक अद्‌भुत शक्ति आती है, जीवन में उत्साह का संचार होने लगता है। परन्तु आज हमारे जीवन में उत्साह है कहाँ? उत्साह का तो चारों ओर अकाल पड़ गया है कलाहीन रोता जीवन। परन्तु यह भाव मन में लाओ कि हमारी सभी क्रियाएँ प्रभु जी के लिए हैं फिर देखो हमारा जीवन कितना अच्छा बन जाता है। इसमें शक नहीं कि परमेश्वर का नाम लेते ही हमारे जीवन में परिवर्तन हो जाता है। यह मत कहिए कि राम–राम कहने से क्या होता है? कहकर देखो, स्वयं अनुभव करो। यह भावना रखो कि परमात्मा मेरे पास है, मेरे साथ है फिर चाहे कुछ भी हो जाए हरि का दास कभी भयभीत नहीं होता।

राम नाम अति मीठा है कोई गाकर देख ले।
आ जाते हैं भगवंत बुलाकर देख ले।।

इसलिए प्रभु से मन लगाओ, गुरु चरणों में प्रीति रखो उनका आशीर्वाद पाकर कृपा प्राप्त करो। अपना सर्वस्व इन्हें अर्पण करते चले जाओ। प्रभु जी के प्रति अपना प्रेम बढ़ाते चले जाओ फिर देखो मलिन जीवन कितना सुन्दर बनता चला जाएगा।

आशय –

जब हम अपने सर्व कर्मों को, सारी क्रियाओं को प्रभु को अर्पण कर देंगे तो इससे जीवन में सामर्थ्य आ जाएगी। मोक्ष हाथ लग जाएगा। कर्म करके उसका फल न छोड़कर, प्रभु को अर्पण करना ही राजयोग है।

यह कर्मयोग से एक कदम आगे जाता है। राजयोग कहता है कर्मफलों को छोड़ो मत प्रभु को अर्पण कर दो, ये वे फूल हैं जो तुम्हें आगे ले जाने वाले हैं। इन्हें मूर्ति पर चढ़ा दो। एक तरफ कर्म करो दूसरी तरफ भक्ति से जीवन को सुन्दर बनाते चलो। कर्मयोग में जो फल छोड़ दिया जाता है, उसे राजयोग में जोड़ दिया जाता है। बोने और छोड़ देने में बहुत फर्क है। बोया हुआ थोड़ा भी अनन्तगुणा होकर मिलता है, छोड़ा हुआ यूँ ही नष्ट हो जाता है। जो कर्म ईश्वर को अर्पण किया जाता है उसे बोया हुआ समझो। उससे जीवन में अनन्त आनन्द भर जाएगा।

इसके साथ ही हम सब की तरफ से मेरे परम पूजनीय 'गुरुदेव भगवान' के श्री चरण कमलों में हमारा कोटि–कोटि नमन।

आत्मसमर्पण फलन

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

गणितशास्त्र में एक्सपोनेन्सियल फलन एक अद्वितीय फलन प्रक्रिया है जो कि सूक्ष्मीकरण (Differentiation) तथा स्थूलीकरण (Integration) की प्रक्रिया में अपरिणामी, धनात्मक तथा निरन्तर वृद्धिकारक (Monotonically increasing) रहती है। परमात्मा अथवा सद्गुरु के सम्मुख आत्मसमर्पण का भी ऐसा ही परिणाम साधकों की अनुभूति में आता है। परमात्मा अथवा गुरुतत्व अपरिणामी, मायातीत तथा सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान हैं। शास्त्र इस सत्य की पुष्टि करते हैं कि –

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तम्।
यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढ़म्।।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारम्।
ईशं तं ज्ञात्वा अमृताः भवन्ति।।
"दृष्टा दृशिमात्रो शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।"
चितेः अप्रतिसंक्रमायाः तदाकारोपपत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम्।
सदा ज्ञाताः चित्तवृत्तयः तत्प्रभोः पुरुषस्य अपरिणामत्वात।।

अर्थात् वह परम तत्व परमात्मा अनादि तथा निर्गुण होने के कारण अपरिणामी अर्थात् मायातीत है, इसलिए उसे प्रत्येक चित्त की चित्तवृत्तियाँ सदैव ज्ञात रहती हैं, वह स्वयं निष्क्रिय तथा निर्लिप्त है, किन्तु बुद्धि के साथ तदाकारता के कारण स्फटिक मणि की भांति बुद्धि के ज्ञान से प्रभावित दीखता है यद्यपि वह केवल साक्षी मात्र दृष्टा है तथा सभी गुणविकारों से निर्लिप्त है। वह जीवभाव में समस्त प्राणियों की बुद्धिरूपी गुफा में गुप्त होते हुए भी मायाधीश है, सृष्टिकर्ता ब्रह्म का आदि सर्वव्यापक महानतम परमात्मा है। समस्त सृष्टि का आधारभूत तथा पालनकर्ता है। अतः उसके आत्मसमर्पण के परिणामस्वरूप सभी जीव मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं। इसके लिए परमात्मा, माया तथा माया की सृष्टि को समझना अत्यावश्यक है। मूल निष्कर्ष है कि –

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।
एतस्यैव अवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढ़मूलं असंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्त्वा।।
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।

अर्थात् विश्व की रचयिता प्रकृति ही परमात्मा की माया है जो अक्षर ब्रह्मस्वरूप से प्रकट हुई है तथा परमात्मा स्वयं इसका मायावी है। अतः मायावी की कृपा के बिना कोई भी माया तथा माया के खेल को नहीं समझ सकता। यह विश्व मायाजनित गुणात्मक पदार्थों से परिपूर्ण है, क्योंकि महर्षि पतंजलि का कथन है कि –

"ते व्यक्तसूक्ष्माः गुणात्मनः।"
गुणक्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः।
परिणामैकत्वं गुणाना वस्तुतत्वम्।।

अर्थात् संसार के सभी स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ माया के तीन गुणों से ही उत्पन्न हुए हैं। जैसे बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से बीज की उत्पत्ति होती है। यह संसार इसी प्रकार की अनन्त कारणकार्य श्रृंखलाओं से रचित हुआ है किन्तु सभी कारणों का मूलकारण माया के गुणक्रम हैं। किसी भी परिणाम का जनक कोई अद्वितीय गुणक्रम है। अतः गुणों का परिणामैकत्व ही किसी पदार्थ का अस्तित्व है। गुणों की प्रक्रिया को बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। यह तो मायावी की त्रिगुणात्मिका माया है। इस मायारूपी पीपलवृक्ष का मूल सर्वोच्च तथा अनन्त स्वरूप परमात्मा में है जो अगम्य है तथा इसकी गुणमयी शाखाओं का ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर अनन्त विस्तार है और मनुष्यलोक में कर्माशयरूपी अनुबन्धों का विस्तार है। मायावी के सम्मुख आत्मसमर्पण तथा विशुद्ध अन्तःकरण में उसके अभूतपूर्व स्वागत का प्रबन्ध ही एकमात्र मायापाश से मुक्ति का उपाय है। यह प्रबन्ध क्या है? इस पर उपनिषदों का कथन है कि :-

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणः पंचधा सम्विवेशः।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम् यस्मिन् विशुद्धे विभति एषोरात्मा।।
सत्येन लभ्यः एषः आत्मा सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रः तं पश्यन्ति निष्कलं ध्यायमानाः।।

अर्थात् यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मतत्व चित्त के द्वारा ही जाना जाता है। इसी चित्त में बुद्धिरूपी गुफा में आत्मा का वास है तथा इसी चित्त में आत्मतेज से युक्त प्राण चित्तवृत्तियों के रूप में व्याप्त होकर प्रकाशित हो रहा है। इन मनोवृत्तियों को बुद्धि के साथ एकाकार आत्मा जीवभाव में ग्रहण करती है। अतः चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर विशुद्ध चित्त में बुद्धि आत्मप्रकाश से प्रकाशित होकर प्रज्ञाचक्षु हो जाती है। जो जीवात्मा ब्रह्मचर्यवृत का पालन करते हुए ज्ञानाग्नि से कर्मबन्धन को जलाकर अपने ज्योतिमय सत्यस्वरूप को योगसमाधि में अनुभव

कर लेती है वह जीवभाव से मुक्त होकर परमात्मभाव में प्रवेश कर जाती है। वस्तुतः जीवात्मा तथा परमात्मा में भेद अविद्याजनित है। अविद्या के कारण ही कर्मबन्धन तथा जन्ममृत्यु के रूप में कर्मफल का मायाचक्र चलता है, क्योंकि –

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव।
रूपाणि देही स्वगुणैः वृणोति।
क्रियागुणैश्चात्मगुणैश्च तेषाम्।
संयोगहेतुः अपरोऽपि दृष्टः।।

(श्वेता. उप. 5/12)

अर्थात् जीवात्मा मायिक गुणों तथा गुणविकारों के वशीभूत अन्तःकरण में संचित कर्मसंस्कारों के अनुसार अनेकानेक योनियों में शरीर धारण करती रहती है। इस जन्म–मरण के आवागमन से तब तक मुक्ति सम्भव नहीं जब तक इन कर्मों के संचित संस्कारों का नाश नहीं हो जाता तथा अन्तःकरण पंचक्लेशों के आवरण से पूर्णतया मुक्त नहीं हो जाता। इसी को अविद्या के अन्धकार का नाश तथा आत्मज्ञान का उदय कहा जाता है। अन्तःकरण की इस प्रकार की अवस्था तब तक सम्भव नहीं जब तक बुद्धिबोधात्मक आत्मा में अहंकार का बीज विद्यमान है। यह अहंकार अस्मिता क्लेश के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है। अतः समाधि की उत्तरोत्तर उत्कृष्ट अवस्थाओं में परमात्मतत्व तथा मायाजनित अन्तःकरण में भेदज्ञान की विशिष्ट विवेकख्याति हो जाने पर ही अविद्या का आवरण नष्ट होता है और तभी स्वरूपोपलब्धि की अनुभूति विशुद्ध अन्तःकरण में होती है। हमारे वेदशास्त्र तथा महापुरुषों के वचन इसके प्रमाण हैं कि –

योगांगानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः।

(योगदर्शन 2/28)

पुरुषः स परः पार्थ भक्तया लभ्यः तु अनन्यया यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।

(गीता 8/22)

जन्मान्तरसहस्त्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः जनानां क्षीणदोषानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते।

सत्येन लभ्यः एषः आत्मा।
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रः।
तं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।
न चक्षुषा ग्रह्यते नापि वाचा।
नान्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा।।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वः ।
ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।।

(मुण्डक उप. 3/1/8)

अर्थात् जब अष्टांगयोग की साधना परिपक्व हो जाती है और उसके फलस्वरूप चित्त पर से माया के विकारों का आवरण हट जाता है तब चित्त में परमात्मा का दिव्य ज्योतिमय स्वरूप प्रकट हो जाता है तथा ज्ञानस्वरूप परमात्मा की ज्ञानदीप्ति में विवेकज्ञान प्रकाशित हो जाता है। वस्तुतः सहस्त्रों जन्मों में निरन्तर तपसाधना यानि सहनशक्ति की अग्नि में मायिक द्वन्द्वों को भस्म कर समतावस्था प्राप्त कर, विवेकज्ञान तथा समाधि की योगसाधना के द्वारा चित्त पर अविद्या का आवरण नष्ट होने पर परमात्मा में अनन्य भक्ति का उदय होता है। इसी अनन्यभक्ति से प्रसन्न सर्वाधार तथा सर्वव्यापी परमात्मा अपनी अविद्यारूपी माया के अन्धकार को अपने ज्ञानज्योति के प्रकाश से नष्ट कर देते हैं। तभी जीवात्मा को परमात्मा के स्वभाव की प्राप्ति होने पर विशुद्ध चित्त वाले साधकों को परमात्मदर्शन की योग्यता मिलती है, अन्यथा परमात्मा का स्वरूप मायातीत होने के कारण हमारी चक्षु, वाणी आदि इन्द्रियों के द्वारा नहीं अनुभव किया जा सकता, वह केवल आत्मसमर्पण की अनन्यभक्ति से ही सम्भव हो सकता है।

● ● ●

जब साधक नाम, रूप, देह, मन, बुद्धि आदि से अपने आप को सर्वथा पृथक समझ लेता है, तब वह ईश्वर की शरण और कृपा से देहादि सम्बन्ध से होने वाले समस्त क्लेशों और पापों से सदा के लिए सर्वदा मुक्त हो जाता है एवं विज्ञानानंदघन परमात्मा का सनातन अंश होने के कारण सदा के लिए प्रभु को प्राप्त हो जाता है।

योग-आसन

उत्तान कूर्मासन

कुक्कुटासन बन्धस्थं कराभ्यां धृत कन्धरं।
पीठं कूर्मवदुत्थानं एतदुत्तान कूर्मकम।।

विधि - पद्मासन लगाकर व अपने दोनों हाथों को कुक्कुटासन की ही तरह उरुभाग में रखे हुए पैरों के पंजे व पिंडलियों के बीच में हाथ निकालकर व ऊपर की ओर ले जाकर अपने कन्धों पर हाथ जमा दें या सम्भव हो सके तो अपने दायें व बायें हाथ के पंजों को परस्पर गर्दन के पीछे से मिलाकर पकड़े रहें। इस आसन को उत्तान कूर्मासन कहते हैं। आजकल योगासनों की श्रेणियों में इसको गर्भासन भी कहा जाता है क्योंकि इस आसन को करने वाले के शरीर की आकृति गर्भस्थ बालक जैसी बन जाती है।

यदि प्लावनी कुम्भक लगाकर करें तो अत्यन्त ही सहज हो जायेगा।

दूसरा प्रकार

इसी प्रकार मुक्त मद्मासन (साधारण पद्मासन जिसमें हाथों को पीछे की ओर से घुमाकर जंघा स्थल में जमाये हुए पैरों के अँगूठे पकड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती) लगाकर सीधे लेट जायें व अपने दोनों पैरों के अँगूठों को दृढ़ता से पकड़ लें (दाहिने हाथ से बायें पैर के अँगूठे को, बायें हाथ से दाहिने पैर के अँगूठे को) कोहनियों को जमीन में लगाये रखें, शिर भाग को थोड़ा उल्टा

कर पीछे की ओर थोड़ा मोड़कर मस्तक जमीन में लगा दें। अपने पेट व छाती के भाग को ऊपर की ओर उठाये रखें। पैरों के अँगूठे सहज तनाव से ऊपर की ओर खींचे रहें। यह भी मत्स्यासन प्रसारित है।

लाभ - इसका प्रभाव मल विसर्जनी नाड़ियों पर पड़ता है। अत: शौच शुद्धि के लिए, आँतों की पुष्टि के लिए व अपान शोधन के लिए उत्कृष्ट है।

समय- आधे मिनट से आरम्भ करके शरीर के बलाबल को देखकर शनै: शनै: अभ्यास बढ़ायें व कम से कम 10 मिनट तक ले जायें। अवश्य लाभ होगा।

इसका विपरीत क्रम - इस आसन को उल्टा लेटकर भी किया जाता है। मुक्त पद्मासन लगाकर उल्टा लेट जायें, पैरों के दोनों अँगूठे उसी प्रकार से दाहिने हाथ से बायें पैर का अंगूठा व बायें हाथ से दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़कर ऊपर की ओर खेंचें। पेट, छाती व शिर को जितना ऊपर की ओर उठाया जा सके उठायें शिर को पीछे की ओर इतना मोड़ें कि पीछे की ओर देखने का प्रयत्न करने पर दिखाई दे। यह इसी आसन का उल्टा लेटकर करने से विपरीत क्रम है। अन्तर केवल इतना ही है कि जब साधक अपने पैरों के अँगूठों को पकड़कर ऊपर की ओर खेंचेगा तो पीछे लगी हुई मुक्त पद्मासन वाली पालथी भी कुछ ऊपर को अवश्य उठ जायेगी।

समय - पूर्ववत् शनै: शनै: बढ़ायें, प्रथमाभ्यास में जल्दी न करें।

लाभ - सभी पूर्वोक्त हैं, केवल इस विपरीत क्रम में भूख अधिक लगती है, क्योंकि इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

● ● ●

आत्म विश्वास अर्थात् स्वयं अपने में विश्वास करना एक कला है जो निरन्तर के अभ्यास से प्राप्त होती है। आत्म विश्वास से परिपूरित व्यक्तित्व स्वयं को दूसरों की दृष्टि में अधिक अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है। उठने-बैठने, चाल-ढाल, बोलचाल, मुस्कराने, कार्य-कलाप, चिन्तन-मनन में प्रतिक्षण जागरूक रहने तथा स्वच्छता अपनाने से आत्म विश्वास की उपलब्धि होती है। यही सफल जीवन की कुंजी है।

गुरुजी तेरे साथ हैं ।

श्रीमती शारदा सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

भारी करना ना अपना जिया कि प्रभुजी तेरे साथ हैं
गुरु जी तेरे साथ हैं।
छोटा करना ना अपना जिया प्रभुजी तेरे साथ हैं।
गुरु जी तेरे साथ हैं।
दुःखी करना ना अपना जिया प्रभुजी सदैव साथ हैं
गुरुजी तेरे साथ हैं।

गलियों गलियों धूम मचेगी
योग शक्ति का होगा प्रचार
जिसमें होंगे लाखों शुमार
मन में सजेंगे संस्कार
आनन्द में डूबेगा संसार
भारी करना ना अपना जिया, छोटा करना ना अपना जिया
प्रभुजी तेरे साथ हैं कि गुरुजी तेरे साथ हैं।
जप तप से करो मन का श्रृंगार
धारणा, ध्यान, समाधि में करोगे अमृतपान
अपने प्रभुजी गुरु जी के करोगे दीदार
नाद ब्रह्म की सुनोगे मधुर झंकार
तुम्हारा होगा बेड़ा पार, मिलेगा अनूठा संसार
भारी करना ना अपना जिया, दुःखी करना ना अपना जिया
प्रभुजी तेरे साथ हैं, गुरु जी तेरे साथ हैं।
सभी साथी छूटेंगे लेकिन प्रभुजी गुरुजी का कभी ना छूटेगा साथ
बढ़ता चला चल, चलता चला चल प्रभुजी तेरे साथ हैं
गुरुजी तेरे साथ हैं।

●●●

गुरुदेव तेरे चरणों में

– जगदीश राए बंसल ''अधम'', नई दिल्ली, मो. : 9212434003

तर्ज – शंकर तेरी जटा से ...

गुरु देव तेरे चरणों से, बहती है योग धारा।
प्रभू जी की कृपा से, ये गुरु चन्द मोहन हमारा।।

गुरु वर हमारे हैं, हम गुरुवर के ही रहेंगे
इस जन्म की ना पूछो, हम आगे भी मिलेंगे
जब से दीक्षा पाई है, ये भाग्य पलटा हमारा।
गुरु देव तेरे ..... (1)

बड़े बड़े मठ देखे, देखे बड़े बड़े जटा धारी
भस्म रमाए पहाड़ों में, बैठे मौनी ब्रह्मचारी
दर तो बहुत देखे, पर नहीं जो दर हमारा।
गुरु देव तेरे ..... (2)

आप रोते को हँसाते और मुर्दे को जिलाते हो
भूले भटके बच्चों को, पूर्ण योगी बनाते हो
जो भी आया दर तेरे, वो सागर पार उतारा।
गुरु देव तेरे ..... (3)

ये मन्द मन्द मुस्कां तेरी, क्या जादू है किया
तेरे शरणों को गुरु जी, मैं तड़फ तड़फ जिया
दर्श विरह में भटके, तेरा ''अधम'' बेचारा।
गुरु देव तेरे ..... (4)

●●●

रामरती ही क्यों ?

– केशवदेव उपाध्याय

उपरोक्त शब्द हमारे–आप के आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के मुखारबिन्द के हैं तथा एक रहस्य का बोध कराने वाले हैं। श्री मुख ने उपरोक्त शब्द कब? क्यों? और किससे कहे थे, इसे समझना–समझाना ही इस कृपा चरित्र का उद्देश्य है।

सन् उन्नीस सौ सत्तासी अठासी के चैत्र सुदी नौमी के उत्सव को, जिस दिन हमारे आपके दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का प्राकट्य दिवस है और जिसे अनाथ नाथ श्री सद्गुरुदेव जी महाराज, श्री प्रभु जी श्री महाप्रभु अवतारोत्सव के उपलक्ष्य में योग महामेला के नाम से सम्बोधित करते रहे हैं; को स्वर्ण जयन्ती अवतारोत्सव वर्ष के रूप में बड़े ही धूम–धाम और उत्साह से मनाया था। इस वर्ष महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के इस शरीर (जिस स्थूल शरीर के स्वरूप का आरती–पूजन और ध्यान हमारे गुरुभाई–बहन करते हैं) से सम्बन्धित अवतार से लेकर लीलावसान तक की सम्पूर्ण घटनाओं तक को प्रदर्शित करने वाली एक दिव्य प्रदर्शनी भी लगाई गई थी, जिसका आयोजन आराध्यदेव की आज्ञा एवं इच्छानुसार हमारे इलाहाबाद मण्डल के भाई–बहनों ने हमारे अन्य मण्डलों के आदरणीय गुरु–भाई–बहनों की मानसिक एवं शारीरिक सहायता एवं सहयोग से किया था। इस प्रदर्शनी का श्रद्धायुक्त भाव से दर्शन करने वालों की आध्यात्मिक स्थिति में अवश्य ही इजाफा हुआ होगा, ऐसी भावना है।

स्वर्ण जयन्ती योग महामेला के इस उत्सव में हमारे आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज कुछ विशेष ही आनन्दित एवं उत्साहित दिखाई दे रहे थे। वैसे अपने इन बाह्यदर्शी नेत्रों से आराध्यदेव की स्थिति का आकलन करना, मूर्खता की परकाष्ठा है, अतः आदरणीय विज्ञ एवं अनुभवी साधकों से अनुरोध है कि इसे अन्यथा न लेने की कृपा करें। मात्र उस समय की स्थिति का स्पष्ट वर्णन करने के लिए उपरोक्त शब्दों का सहारा लिया गया है। इस विशेष स्वर्ण जयन्ती अवतारोत्सव में विदेश से आने वाले साधकों की संख्या भी लगभग ग्यारह थी। इस उत्सव में अन्य वर्षों के अवतारोत्सव की अपेक्षा हमारे गुरुभाई–बहनों की संख्या लगभग दूनी थी। कारण यह था कि अराध्य देव श्री गुरुदेव जी महाराज पूरे बीते वर्ष अपने यौगिक प्रवचनों में यह रहस्य बतलाते रहे कि अगले साल की नौमी श्री प्रभु जी का स्वर्ण जयन्ती अवतारोत्सव है तथा सभी कार्यक्रमों में यह भी आज्ञा देते रहे कि समय निकाल कर तुम लोगों को इस विशिष्ट योग महामेला का आध्यात्मिक लाभ उठाना चाहिए। किसी–किसी अपने यौगिक प्रबन्धों में श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने यह भी संकेत दे दिया था कि श्री प्रभु जी के कई सिद्ध योगी बच्चे इस महोत्सव का दर्शन लाभ लेना चाहते हैं। अतः तुम लोग भी इस शुभ–अवसर का लाभ उठाने का भरसक प्रयास करना। इंतजार की घड़ियाँ खत्म हुई एवं चैत्र का सन् उन्नीस सौ अठठासी का

समय आ ही गया। इस साल का उत्सव नौ दिनों का था, जिसमें सप्तमी, अष्टमी एवं नौमी का उत्सव विशेष था।

श्री सवांई आश्रम में जिज्ञासु, आगन्तुकों, श्रद्धालुओं एवं हमारे गुरुभाई–बहनों के ठहरने के लिए बहुत जगह उपलब्ध है परंतु आश्रम के सभी आवास (हाल एवं कमरे) नवरात्र के तीसरे दिन तक पूर्ण रूपेण भर गये थे। छोटे–छोटे टेन्ट (छोलदारी) जिसमें लगभग दस प्राणी आसानी से निवास कर सकते हैं, श्री गुरुभवन के ठीक सामने वाले खेत में, श्री दादा गुरुदेव के द्वारा शक्तिपातित तालाब की मेड़ के पास तक लगे थे तथा भोजनालय के पीछे वाला खेत भी, जहाँ इस समय ट्यूबेल लगा है, टेन्ट से पूरी तरह भर गया है। सप्तमी के तिथि तक उपरोक्त वर्णित स्थान आगन्तुकों से पूरी तरह भर गया था एवं अवतारोत्सव दिवस को सभी बरामदें पूर्णरूपेण आगन्तुकों से खचाखच भरा हुए थे। इसके बाद भी आने वालों का तांता लगा हुआ था एवं जिसको जहाँ भी जगह मिली, अपना सामान रखकर पुण्य का भागी बन रहा था। उत्सव के कार्यक्रमों मे जब भी आराध्यदेव प्रवचन करते थे तो यह संकेत देते थे कि सावधान मन से रहकर आश्रम की सेवा करो।

आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा यह स्वर्ण जयन्ती श्री महाप्रभु अवतारोत्सव खूब धूम–धाम से मनाया जा रहा था। प्रातः काल की आरती के बाद श्री गुरुदेव जी महाराज द्वारा श्री मद्भगवत गीता का पाठ कराया जाता था,उसके बाद एक घंटे का ध्यानाभ्यास कराया जाता था। तदन्तर श्री गुरुगीता का पाठ करते हुए श्री गुरुदेव जी महाराज सरल एवं सुबोध भाषा में आध्यात्मिक उदाहरणों के साथ, साधकों को हृदयस्त करा रहे थे। इन रहस्यों का बोध कराते हुए आराध्यदेव जी के द्वारा लिखित "आठ योगी" नामक पुस्तक से पूरा विवरण (कृपा चरित्र) जान सकते हैं तथा योगिनी रामरती बुआ जी के उद्धार की घटना का वर्णन श्रीगुरुदेव भगवान ने श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन की "समाधिस्था योगिनायाँ" नामक पुस्तक में सविस्तार लिखा है। नवागन्तुक इस सिद्ध योग दरबार से जुड़ने वाले साधक–साधिकाओं को त्रयलोक वन्दित श्री गुरुदेव भगवान योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज द्वारा लिखित साहित्य को कम से कम एक बार तो अवश्य–अवश्य एकाग्र मन से पढ़ लेना चाहिए। इससे उनके साधनों का पथ सरल एवं सुगम्य हो जायेगा, यह ध्रुव सत्य है।

श्री मुख ने कहा कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध चार भागों में बांटा जा सकता है।

पहला पक्ष यह है कि गुरु के अन्दर कोई आध्यात्मिक तत्व विद्यमान न हो परंतु अपनी सांसारिक प्रतिष्ठा एवं शाब्दिक ज्ञान द्वारा वह अपने को गुरु मान बैठा हो एवं लोगों को अपने भ्रामक माया जाल में फंसाकर उन्हें दीक्षा देकर मुक्त कराने का मिथ्या आश्वासन दे रहा हो। शिष्य भी उसकी बातों पर विश्वास कर दीक्षा ले लेवें कि अब तो हमने दीक्षा ले ली है एवं हम आवागमन के चक्र से छुटकर मुक्त हो जायेगें। स्वयं कोई साधना और अभ्यास न करें, अपने गुरु में भी कोई श्रद्धा न रखता हो बल्कि मुक्ति दिलाने वाला कन्ट्रैक्टर समझता हो तो ऐसे

गुरु–शिष्य का क्या भविष्य है, स्वयं समझ लेवें। ऐसे गुरु शिष्य के लिए कहाँ गया है:–

गली–गली में गुरु फिरे, कोई गुरु दीक्षा लेय।
स्वर्ग जाय या नरक में, हमें रूपैया देय।।

ऐसे गुरु–शिष्य की जोड़ी के उदाहरण की आवश्यकता नहीं है, इसको जानने का विचार आने पर अनेकों उदाहरण स्वयं उपस्थित हो जायेंगे।

दूसरा पक्ष यह है कि गुरुदेव पूर्ण ज्ञाता तो है परंतु शिष्य के कल्याण की कामना नहीं करता है साथ ही शिष्य श्रद्धा का पुतला है एवं अपने गुरुदेव को पूर्ण ईश्वर ही मानता है। ऐसे में शिष्य अपनी श्रद्धा के बल पर पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। इसका उदाहरण श्री गुरुद्रोण एवं श्री एकलव्य शिष्य की कहानी है। श्री गुरुद्रोण द्वारा दीक्षा से इंकार किये जाने पर अनुकरणीय श्रद्धा का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए आदरणीय एकलव्य ने जंगल में गुरु श्री द्रोण की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उससे दीक्षा ली (अपने काल्पनिक श्रद्धाभाव से) एवं संसार जानता है कि अपनी श्रेष्ठतम श्रद्धा के बल पर श्री गुरुद्रोण के सबसे प्रिय शिष्य अर्जुन से आगे निकल गया। परंतु इस घोर कलिकाल में ऐसा श्रद्धावान साधक मिलना असम्भव सा ही है।

तीसरा गुरु–शिष्य का सम्बन्ध इस प्रकार का है कि गुरुदेव सर्वज्ञाता हो एवं शिष्य बिल्कुल ही अपने गुरु के संबंध में अविश्वासी हो। ऐसे संबंधों में भी शिष्य परमगति का अधिकारी बन जाता है। श्री सवांई धाम आश्रम से संबंधित हमारे आदरणीय पुराने गुरुभाई–बहन इस तथ्य को अच्छी प्रकार से जानते हैं कि त्रयलोक पावन, स्वयं नारायण हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने जब दुराचारिणी बालिका रामरती को आदेश दिया की तुम्हें जो इस घृणित कार्य से प्राप्त होता है, इससे गुना सुख (आनन्द) हम तुम्हें अभी प्रदान करेंगे, तो उसे बिल्कुल ही विश्वास नहीं हुआ। बालिका रामरती ने कहा, "हमें आप की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है।" श्री दादा जी ने कहा, "हमारी बातों पर तुम्हें कैसे विश्वास होगा?" बालिका रामरती ने कहा, "इस नारायणी नदी के जल में खड़े होकर, हाथ में जल लेकर एवं जनेऊ पकड़ कर कहिए की आप सत्य कह रहे हैं; तब हमें विश्वास होगा।" धन्य है पतित पावन। उन्होंने वैसा ही किया, जैसा करने से चरित्रहीन बालिका रामरती को उनकी बातों पर पूर्णरूपेण विश्वास हो गया। तदन्तर दीन दुनियां के स्वामी श्री महाप्रभु जी ने उसे शराब की बोतलें फेंक कर, स्नान करने का आदेश दिया। जिसे उसने तत्काल पालन किया। उसके बाद उसे बैठने का आदेश दिया श्री महाप्रभु ने फिर उसके सिर पर अपना बरद हस्त रख कर महान चरित्रहीन ठाकुर परिवार की बालिका रामरती को एक पल में योगिनी रामरती बना दिया। अब तो यही कह के मन को श्रद्धालु बनाना है:–

बन्दौ क्या प्रभु कृपा की बात, जासु कृपा नहिं कृपा अघात

चौथा पक्ष वह है कि जिसमें शिष्य श्रद्धा का पुतला हो एवं गुरु श्री सद्गुरु तत्व से परिपूर्ण हो। ऐसी स्थिति में एक क्षण में प्राणी मुक्त हो जाता है श्री सिद्ध गुफा सवांई आश्रम से

सम्बन्धित गुरुभाई–बहन, आश्रम पर आने वाले जिज्ञासु आध्यात्मिक साधक एवं सेवक दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा बलिया जिले के एक बालक श्री हरिराम नन्द जी महाराज बनाने वाले कृपा प्रसंग से अवश्य ही परिचित होगें। यदि नवागन्तुक साधक इस कृपा चरित्र से अनभिज्ञ है तो आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज द्वारा लीखित "आठ योगी" एवं "समाधिस्था योगिनायें" नामक पुस्तकों का कम से कम दो–तीन बार अध्ययन एवं मनन कर लेवे।

आज स्वर्ण जयन्ती अवतार महोत्सव का सातवां दिन है। प्रातः काल से ही एक महिला जो बिल्कुल सफेद साड़ी एवं सफेद ब्लाउज पहने हुई है एवं जिसकी अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष लग रही है; प्रातः काल से ही श्री सवाई धाम की प्रत्येक प्रकार की सफाई कर रही है। प्रातः काल पौने चार बजे उठने वाले साधकों ने देखा कि वह झाड़ू लगा रही है एवं सात बजे तक झाड़ू लगायी। स्नानागार (महिला एवं पुरूष) की सफाई की। भोजन प्रसाद लेने वाले, उन लोगों के जूठे पत्तल एवं पुरवा (कुल्हड़) जो पंगत में छोड़ दिये गये थे, उठाकर आश्रम के बाहर सड़क की दूसरी तरफ फेंक रही हैं स्नानागार की नालियां जाम होने पर उसके कूड़े–करकट हटाकर हाथ से साफ कर रही है। वह बिना किसी से बात किये, स्वयं की मस्ती में; शारीरिक थकावट से अप्रभावित रहकर अपना कार्य कर रही है। ऐसा लग रहा था कि इस मेले में उसका कोई परिचित नही है। यह कार्य उसने सप्तमी–अष्टमी एवं नौमी की तिथियों में किया।

श्री सवाई धाम से संबंधित हमारे गुरुभाई–बहन, आराध्यदेव जी के लाड़ले शिष्य, अच्छी स्थिति के योगाभ्यासी साधक हमारे आदरणीय गुरुभाई ब्रह्मचारी श्री ब्रज मोहन जी से अवश्य ही परिचित होंगे। श्री प्रभु कृपा का प्रचार और प्रसार, जिज्ञासु प्राणियों को श्री प्रभु दरबार से जोड़ना तथा श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार अपनी नियमित साधना करना ही इनके इस जीवन का उद्देश्य है वह इस महोत्सव में नवरात्र आरम्भ होने के साथ या पूर्व ही श्री सवाई धाम आ गये थे। हमारे एक गुरुभाई श्री अनिल शर्मा जी सम्भवतः सप्तमी को प्रात काल ही श्री सवाई धाम पहुँच गये थे। ये भाई जी भी, हमारे आदरणीय भाई श्री ब्रजमोहन जी के रूकने वाले स्थान पर ही निवास करने लगे। उपरोक्त महिला को कार्य करते हुए सभी आगन्तुक कभी न कभी अवश्य ही देख रहे थे। परंतु किसी ने इस बात पर गम्भीरता से विचार नहीं किया। श्री अनिल शर्मा से आदरणीय भाई श्री ब्रजमोहन जी से नौमी के दिन अपराह्न तीन बजे कहा कि भाई जी, यह महिला सदैव आश्रम की सेवा में रहती है। यह किसी से बात भी नहीं करती। लगता है इसका यहाँ कोई परिचित भी नहीं है। इस संबंध में आप हमें कुछ बतलाने की कृपा करें। आदरणीय भाई जी ने कहा, "अच्छा! पता करते हैं।" इसी समय वह महिला पंगत का किसी दूसरे का जूठा पत्तल लेकर सड़क की पल्ली तरफ फेकनें गई और फेंक कर आ गई एवं फिर स्नानागार की नाली साफ करने लगीं। आदरणीय श्री ब्रज मोहन जी ने उस महिला को ध्यान से देखा एवं फिर कहा, "अनिल जी! हमें लगता है कि यह रामरती बुआ जी हैं।" हमारे आदरणीय भाई जी बड़े ही

हसमुख स्वभाव के हैं, उन्होंने अनिल भाई जी से कहा:–

हाथ कंगन को आरसी क्या, पढ़े लिखे को फारसी क्या

अभी पता कर लेते हैं। वे हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री दशरथ जी को साथ लेकर पहुँच गये, गुरु भवन; जहाँ त्रिलोकी नाथ तकिये पर अपना बांया कर कमल लगाकर आधे लेटे हुये थे। जाकर साष्टांग प्रणाम किया एवं हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, "कहो लल्ला! क्या बात है?" आदरणीय भाई जी ने निवेदन किया, "गुरु जी! एक महिला जब से आई है केवल आश्रम की सफाई ही कर रही है। कभी झाड़ू लगाना, कभी दूसरे के जूठे पत्तल, आश्रम की बाउन्ड्री से बाहर फेंकना एवं कभी स्नानागार की सफाई करना, यही उनका कार्य है। किसी से भी बात करते हमने नहीं देखा। हमें आभास हो रहा है कि वे रामरती बुआ जी हैं।"

उनकी बातों को सुनकर आराध्यदेव जी पलंग पर ही अर्ध पद्मासन पर बैठ गये एवं गम्भीर वाणी में बोले, "रामरती ही क्यों, श्री प्रभु जी के कई सिद्ध योगी बच्चे, इस समय आश्रम की सेवा कर रहे हैं एवं श्री प्रभु जी के स्वर्ण जयन्ती जन्मोत्सव को अपनी आँखों से देखकर उसका आनन्द ले रहे है। हमारे बच्चों को इस उत्सव अवधि में विशेष सतर्क एवं सावधान रहना चाहिए क्योंकि इनका वरदान एवं श्राप तत्काल प्रभावी होगा। तुम जाओ। रामरती जी! जब सेवा से खाली दिखलाई दें तो उन्हें सादर श्री प्रभु जी के भण्डारे का भोजन करवा दो। एक बात का ध्यान रखना, यह बात किसी को बतलाने या ढिंढोरा पिटवाने वाली नहीं है। इस बात को इस समय किसी से भी, न कहना ही श्रेयस्कर है।" आदरणीय भाई जी ने जी गुरु जी कहा, उसके बाद साष्टांग प्रणाम किया एवं पुनः अपने उस स्थान पर आ गये, जहाँ से योगिनी रामरती कार्य करते हुए दिखलाई दे रही थी। जब योगिनी रामरती जी सफाई कार्य से निवृत्त होकर, आश्रम में स्थित कुए की जगत (फर्स) पर आराम करने की नीयत से बैठ गई, उसी समय हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री ब्रजमोहन जी ने उनके सम्मुख उपस्थित होकर प्रणाम करके निवेदन किया "बुआजी! आप हाथ पैर धो लीजिए, मैं आपके लिए भण्डारे का प्रसाद लेकर आ रहा हूँ।" उन्होंने सिर हिलाकर स्वीकृति प्रदान की एवं भाई साहब के सामने गौशाला में चली गई। वहाँ जाकर योगिनी रामरती जी ने गौओं के पीने के लिए इकट्ठा पानी से घुटने से नीचे का पैर, पूरी बांह और अपना मुंह और सिर, आश्रम की मिट्टी लगा–लगा कर धोया उनके द्वारा इतना कार्य करने की समाप्ति तक भाई जी आश्रम का महाप्रसाद लेकर पहुंच गये। योगिनी रामरती जी ने वहीं गौशाला में टाट पर बैठ कर प्रसाद ग्रहण किया।

प्रसाद ग्रहण कर लेने के बाद, आदरणीय भाई जी ने उनका जूठा पत्तल फेंकने की नीयत से उठाना चाहा, तो बुआ जी ने मधुर मुस्कान के साथ स्पष्ट तौर पर मना कर दिया एवं स्वयं अपना पत्तल बाहर फेंकने गई, आश्रम की परिधि से पार होते ही, सिर झुका कर एक बार श्री सिद्ध गुफा एवं आश्रम को प्रणाम किया एवं फिर वापस नहीं आई। इस प्रकार नौमी का स्वर्ण

जयन्ती महामेला अवतारोत्सव का आज अन्तिम दिन था। आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, साधकों, जिज्ञासुओं की उपस्थिति के बीच स्वयं भी उपस्थित रहकर नौमी की पूरी रात होने वाले श्री प्रभु प्रेम श्रद्धा वर्धक भजनों को सुनते रहे। दशमी नक्षत्र को प्रातः चार बजे श्री गुरुदेव भगवान ने अखिल ब्रह्मांड नायक, परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की विदाई वाली आरती की एवं इस प्रकार परम योग योगेश्वर का स्वर्ण जयन्ती अवतारोत्सव का बड़ा ही भव्य समापन हुआ।

दशवीं की रात्रि कालीन आरती के बाद श्री गुरुदेव भगवान ने अपने संक्षिप्त उद्‌बोधन में कहा, "श्री प्रभुजी की चरण–शरण प्राप्त कर तुम लोग, उनके अपने हो गये हो। वे कल्याण धन श्री प्रभु जी अपने बालकों पर कृपा करते ही करते हैं। परंतु हमारी एक बात मान लो एवं आज से ही कम से कम एक घंटा से कुछ ज्यादे मंत्र जप अवश्य ही किया करो। यह आश्रम श्री प्रभु जी ने तुम लोगों को ठहरने एवं साधना करने के लिए बनवाया है। अतः यहाँ निवास कर साधना करो एवं अपने निष्काम पुण्य को बढ़ाते जाओ। प्रातः सायं खूब श्रद्धा प्रेम पूर्वक श्री प्रभु जी की आरती करो एवं मंत्र जप करो। अपने सभी सांसारिक कार्य श्री प्रभु जी पर छोड़कर चिन्तामुक्त रहो। बार–बार आशीर्वाद"

श्री मुख का यह उद्‌बोधन, उस समय समझ में नहीं आया। माघ मेला में एक गुरुभाई जी से उसी साल इसको समझाने हेतु निवेदन किया तो उन्होंने उदाहरण द्वारा यह बात समझाई। उदाहरण इस प्रकार रहा। एक यात्री साईकिल से यात्रा कर रहा था। उसके साईकिल का पिछला टायर कई स्थान पर फटने की स्थिति में था। उसे दस किलो चना अपनी रिश्तेदारी में पहुँचाना था। उसने सोचा कि यदि साईकिल पर मैं बैठकर यात्रा करता हूँ एवं दस किलो चना भी कैरियर में बांधता हूँ तो साईकिल का पिछला टायर अवश्य की भ्रष्ट (फट) हो जायेगा। अतः उसने एक उपाय सोचा जिससे साईकिल का टायर न फटे। उसने दस किलो चना की गठरी अपने सिर पर रखकर अपनी रिश्तेदारी की यात्रा की। साईकिल से यात्रा कर वह बड़ा प्रसन्न था कि हमने अपनी बुद्धि से टायर बचा लिया वरना अवश्य ही फटा जाता। परंतु सत्यता इससे अलग है। चना यात्री के सिर पर रहे या साईकिल के कैरियर पर, बोझ तो साईकिल के टायर पर ही पड़ेगा। यही हालत हमारे जैसे गुरुभाई–बहनों की है, जो अज्ञानता वश यह सोचते रहते हैं कि अमुक कार्य का बोझ मैं उठा रहा हूँ, जब कि हकीकत इससे अलग है। हम अबोध बच्चों को श्री आराध्यदेव जी गूढ़ रहस्यों को समझने की शक्ति प्रदान करने की कृपा करें, इसी प्रार्थना के साथ, यह प्रसंग समाप्त हुआ।

बोध कथा

हमें अपने बारे में कुछ खबर नहीं

हमारा ध्यान हमेशा दूसरों पर रहता है, स्वयं पर नहीं, हमारे मन में हमेशा दूसरों के प्रति आकर्षण रहता है, स्वयं के प्रति नहीं, हमारा मन भी हमेशा दूर-दूर भागता रहता है, अपने पास नहीं आता। आंखें दूसरों को ही देख पाती हैं अपने आपको नहीं, कान दूसरों को ही सुना करते हैं अपनी नहीं सुनते। इसका परिणाम यह है कि हमें अपने बारे में कुछ खबर नहीं। हम दूसरों के बारे में तो खूब जानते हैं पर खुद के बारे में कुछ नहीं जानते। हमारी बड़ी तीव्र इच्छा रहती है कि हम अधिक से अधिक लोगों को जानें, अधिक से अधिक लोग हमें जाने, हम लोकप्रिय हों, प्रसिद्ध हों पर हम अपने आप को जानने की कभी कोशिश नहीं करते जबकि सबसे पहले तो हमें खुद को ही जानने की कोशिश करनी चाहिए थी। हम अपने बारे में जो कुछ जानते हैं वह सत्य नहीं, मिथ्या है, शाश्वत नहीं, नाशवान है क्योंकि आज है पर कल को नहीं रहेगा, जैसा आज है वैसा कल नहीं रहेगा। हमारे ऋषियों ने कहा था- 'स्वाध्यायान्माप्रमदः' अर्थात् अपने आपको अध्ययन करने में, अपने आपको जानने में आलस्य मत कर, भूल मत कर। हमें पता नहीं है कि हम अपने आपमें कितनी मूल्यवान सम्पदा, कैसे अपार शक्ति और कैसी अद्भुत सम्भावना छिपाये हुए हैं। हमें इस सम्पदा की खबर नहीं है और हम भिखारी की तरह दूसरों से मांगते रहते हैं, दूसरों पर निर्भर रहते हैं, हमारी मांगे कभी खत्म नहीं होतीं और मांगे पूरी करते-करते यह जीवन बीत जाता है। काश ! हमें अपने आप में छिपी सम्पदा का ज्ञान हो जाता।

एक महानगर के प्रमुख बाजार की सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी वर्षों तक भीख मांगता रहा। उस जगह उसे चीथड़ों में लिपटा, भीख मांगते हुए देखने के लोग अभ्यस्त हो चुके थे। एक दिन वह मर गया। लावारिस था सो लोगों ने उसका अन्तिम संस्कार किया। वह स्थान बहुत गन्दा हो गया था, लोगों ने वहां सफाई करवाई लेकिन गन्दगी और बदबू जाती न थी क्योंकि वर्षों से वह गन्दा भिखारी वहां पड़ा हुआ था तो किसी ने सलाह दी कि इस जगह की थोड़ी मिट्टी खुदवा कर फेंक दो और इन चिथड़ों में आग लगा दो। जब मिट्टी खोदी गई तो वहां भारी मात्रा में गड़ा हुआ धन निकला। पुलिस को खबर की गई और पुलिस ने पूरे धन का पंचनामा बनाया तो सोने चांदी के जेवरों के अलावा हीरे जवाहरात व सोने के सिक्के भी पाये गये। सबकी कीमत लाखों में नहीं करोड़ों में थी। यह देख कर लोग बोले कि कैसा अभागा था यह भिखारी। कितनी धन सम्पदा अपने नीचे दबाए बैठा था पर उसे इसका पता ही नहीं था, उसने ऐसी कोई कोशिश भी नहीं की क्योंकि उसे इसका ज्ञान ही नहीं था। *काश! कोई उसे इसका ज्ञान करा देता।*

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11 September 2013

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

Rajesh Kumar Gupta
Sainik Nagar
Gangapur City(SWM)
Rajasthan

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्। वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 6/21-22)

जिस अवस्था में योगी उस परम सुख को जानता है, जो बुद्धि से ही ग्रहण किया जाता है न कि इन्द्रियों से और न उसमें स्थित हुआ तत्व से फिसलता है। जिस आनन्द को प्राप्त कर योगी उससे बढ़कर अधिक और कोई लाभ नहीं समझता है और जिस अवस्था में स्थित योगी महान् दुःख से भी कभी विचलित नहीं होता, उस दुःखों में मेल से अलग अवस्था को योग नाम वाला जाने।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्दमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाऊलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय प्लास्टिक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566.
सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दाऊलाल शर्मा